चित्र भागवत रामायणम्

श्री हरिः

पिबत भागवतं रसमालयम्

व्याख्याताः
धर्म सम्राट् ब्रह्मस्वरूप यतिचक्र चूड़ामणि
श्री हरिहरानन्द सरस्वती
(श्री स्वामी करपात्री जी महाराज)

संग्रहकर्त्ता :
कृष्ण प्रसाद शर्मा

प्रकाशकः
धर्म-संघ प्रकाशन
३८४, स्वामी पाड़ा, मेरठ-२

❑ प्रकाशक :
श्यामसुन्दर वाजपेयी
अध्यक्ष
धर्म संघ प्रकाशन
३८४, स्वामी पाड़ा, मेरठ-२ (उ० प्र०)
दूरभाष ५१५६३६

❑ **प्रथम संस्करण**

❑ **माघ शुक्ला चतुर्दशी**
विक्रमाब्द २०३६ (२१-१-८३)

❑ **द्वितीय संस्करण**
बैशाख शुक्ल पंचमी
विक्रमाब्द २०५३ (२३-४-९६)

मूल्य : पन्द्रह रुपये

❑ लेजर टाइपसैटिंग
यूनिक कम्प्यूटर सैन्टर, शारदा रोड, मेरठ।
फोन ५११८३६

❑ मुद्रक :
नवयुगान्तर प्रेस, शारदा रोड, मेरठ-२

आत्म निवेदन

गत पचास वर्षों में देश के विभिन्न भागों में धर्म, संस्कृति, दर्शन, राजनीति आदि विषयों पर धर्मसम्राट् पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा अनेक सैद्धान्तिक भाषण दिये गये, उनमें से अनेक यथासमय प्रकाशित भी होते रहे, फिर भी न जाने कितने प्रवचन अप्रकाशित रह गये ? कितने भाषणों की तपः पूतवाणी भक्तों के पास टेप में सुरक्षित है? महाराज जी जो भी बोलते थे, उसका सैद्धान्तिक सुदृढ़ आधार होता था। विश्व के समस्त दर्शनों का मन्थन करके उन्होंने सुस्थापित किया, कि उनके मूल में जो भी 'सत्यं शिवं सुन्दरं' है उसका मूलाधार अनादि अपौरुषेय वेद ही हैं। महाराज श्री एक ही साथ राष्ट्रभक्त, गो-भक्त, राजनीतिज्ञ, समाजशास्त्री, दार्शनिक, अर्थशास्त्री, भाषाविद्, यज्ञकर्ता, ग्रन्थकार, वाचस्पति, यति, वाग्मी, वेदवित्, ब्रह्मण्य, योगी, विद्वत्तम, वीतराग, अनन्तश्री, तपः पूत, कृतकर्मा, तत्त्वदर्शी, महात्मा थे। वह विश्व के सब धर्मों का आदर करते थे उनका कथन था, कि सब प्राणी 'अमृतस्य पुत्रः।' एक ही भगवान् की सन्तान हैं। विश्व संस्कृतियों की खिचड़ी उन्हें अभीष्ट नहीं थी। वह अध्यात्मवाद के धरातल पर विश्व की सभी संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं मत-मतान्तरों को अपने-अपने ढंग से फलते-भूलते रहते हुए विश्व कल्याण की कामना करने वाले उदारचेता सन्यासी कारक पुरुष थे। उनके उन रूपों को कभी शोधकर्त्तागण अपनी शोध का विषय बनायेंगे। फिर भी अद्यावधि पांच छह्र शोधकर्त्ता महाराज श्री के विभिन्न स्वरूपों, विचारों वं सद्ग्रन्थों पर शोधकार्य सम्पन्न करके वाचस्पति की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं, परन्तु उनका एक सबसे विलक्षण भक्त रूप है जो सनातनधर्मियों का जीवन है। उनके इन ज्ञानी-भक्त के स्वरूप पर बड़े-बड़े शुष्क दार्शनिक विचारक और वेदान्ती भी आकर्षित हुए। भक्ति का विवेचन करते हुए उनका रोम-रोम पुलकायमान हो उठता था, मन भक्ति में सराबोर हो जाता, गद्‌गद् वाणी से कण्ठ अवरुद्ध हो जाता और नेत्रों से अश्रुधारा प्रवहमान हो उठती। जिस समय वह भावविह्वल होकर भगवच्चरित्रामृत का गुणगान करते, तो श्रोतागणों तक को आत्म-विस्मृति-सी हो जाती और ऐसा प्रतीत होता, मानो वक्ता और श्रोता दोनों किसी भावलोक में अवस्थित होकर अलौकिक आनन्दानुभूति कर रहे हैं। महाराज श्री के अनेक अवसरों के अनेक भक्तिपरक प्रवचनों का संग्रह मेरे पास है, परन्तु अप्रैल ८१ में नवरात्र अर्थात् ब्रह्मलीन होने से मात्र दशमास पूर्व काशी के बाहर कानपुर में दिये गये उनके अन्तिम भाषणों का टेप श्रीयुत वाजपेयी जी ने सुना, तो उनके अन्तिम प्रवचन होने के नाते उनकी प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर पुस्तक रूप से प्रकाशित करने का उन्होंने

संकल्प लिया। कानपुर धर्म संघ के मन्त्री श्री गणेशशंकर जी शुक्ल के प्रयास से श्री रामकुमार जी मिश्र कानपुर से उक्त अन्तिम चार प्रवचनों के अमूल्य टेप मुझे प्राप्त हो सके, जिसके लिये मैं इन दोनों ही महानुभावों का हृदय से आभारी हूं। 'रासपंचाध्यायी' पर प्रारम्भ की गयी इन प्रवचन माला की वाणी श्री शुकदेव जी महाराज के महात्म्य एवं परात्पर परब्रह्म भगवान् श्री कृष्णचन्द्र परमानन्द कन्द तथा वृषभानुनन्दिनी राज राजेश्वरी, रासेश्वरी नित्यनिकुञ्जेश्वरी राधारानी के पावन चरित्रामृत का आस्वादन कराते-कराते बीच में ही कानपुर से काशी और फिर अनन्त ब्रह्म में प्रविलीन हो गयी, परन्तु भगवान् के वेणुगीत निनाद के समान अध्यात्मवाद के मूल इस पवित्र देश के अणु-अणु में आज भी गूंज रही है। उसी गूंज की उसी पवित्र भक्तवाणी को टेप के अनुसार यथावत् भाषा देने का अगले पृष्ठों में प्रयास किया गया है। इसमें आचार्य श्यामलाल जी देहली, श्री ब्रजभूषण शर्मा एवं श्री नारायणदत्त शर्मा के सहयोग के लिये आभार मानते हुए त्रुटियों के लिए ब्रह्मस्वरूप महाराज श्री एवं उन्हीं के आत्मरूप भगवद् भक्त पाठकों से विनम्रतापूर्वक क्षमा याचना करते हुए आशा करता हूं, कि प्रबुद्ध-भक्तजन इससे लाभान्वित होंगे। उनकी पुण्यकीर्ति सदा सर्वदा हमारा मार्गदर्शन करती रहे, यही निवेदन परात्पर परब्रह्म परमात्मा के श्री चरणों में उनकी प्रथम पुण्य तिथि के अवसर पर निवेदित है।

निवेदक
कृष्ण प्रसाद शर्मा

बैशाख शुक्ल पंचमी, विक्रमाब्द २०५३
३४/३-७, शास्त्रीनगर,
मेरठ-२ (उ० प्र०)

श्री हरि

सनातन इतिहास परम्परा और करपात्र स्वामिनः

सृष्टि के प्रारम्भ से ही दैवी और आसुरी वृत्तियों का संघर्ष चलता रहा है, चाहे अमृत मन्थन का समय रहा हो, चाहे बाराहावतार का समय रहा हो। समग्र पृथ्वीतल पर ही नहीं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में यह संघर्ष सदा ही रहा है। भूमण्डल में काल विभाजन की व्यवस्था चार युगों में बांटी गयी, जिसमें उत्तरोत्तर धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता गया। इस चतुर्युगी में सतत् संघर्ष रहा, चाहे वह त्रेता में रामराज्य स्थापना-काल रहा हो या द्वापर में युधिष्ठिर के धर्मराज्य की स्थापना का काल रहा हो। महाभारत के रणाङ्गण में ही कर्त्तव्य और धर्म का उपदेश करते हुए भगवान् श्री कृष्ण को उद्घोष करना ही पड़ा, कि "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।"

गीता का यह अमर उद्घोष आज भी सच है। भगवान् का कभी पूर्णावतार और कभी अंशावतार इस भारत भूमि पर होता ही रहा है परन्तु—वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक इस संघर्ष का नेतृत्व क्षत्रियों को ही करना पड़ा और वे ही असुरों का, राक्षसों का दलन रणाङ्गण में करते रहे। भगवान् राम के वानरों की सहायता से लंकाधिपति को परास्त किया और भगवान् कृष्ण ने कंस-जरासंध—शिशुपालादिकों का वध किया और अपनी राजनैतिक सूझ-बूझ से कौरवों की पराजय तथा पाण्डवों की विजय के कारण बनकर धर्म की स्थापना की।

कलियुग के आरम्भ में भी जनमेजयादि के यज्ञों की परम्परा एवं युद्ध इसी संघर्ष के परिणाम रहे। गौतम बुद्ध ने मनु की व्यवस्था में परिवर्तन कर आचार धर्म को प्रभावित किया और क्रमशः बौद्ध एवं जैन मतों के प्रचार प्रसार द्वारा सनातन हिन्दु धर्म का ह्रास होने लगा। यह क्रम सतत् चलता रहा और तत्कालीन न्याय मीमांसा और धर्म शास्त्रों के आचार्यों ने उनसे वैचारिक जगत में लोहा लिया, पर जन साधारण का अलगाव वैदिक धर्म से बढ़ता गया। वैदिक मर्यादा की स्थापना के लिए आद्य श्री शंकराचार्य इस देश में आविर्भूत हुए। लगभग २४०० वर्ष पूर्व केरल प्रदेश में कालड़ीग्राम में पण्डित शिवगुरु के पुत्र रूप में सती माता की गोद में भगवान् शंकर के अंशावतार आद्य श्री शंकराचार्य अवतरित हुए। आठ वर्ष की छोटी अवस्था में यह सन्यासी रूप में देश में विचरण करने लगे और बारह वर्ष की आयु में शास्त्रार्थों की परम्परा प्रारम्भ हो गयी, जिसमें उन्होंने नास्तिकों को परास्त करके आचार एवं धर्म की मर्यादा के साथ अद्वैतमत, वेदान्त सिद्धान्त का प्रतिष्ठापन किया। ३२ वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने सम्पूर्ण भारत में घूम-घूमकर चारों दिशाओं में चार शांकरमठों की स्थापना की और महानुशासन के उपदेश से भविष्य में वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा रक्षार्थ

व्यवस्था बांधी। लगभग एक हजार वर्ष तक उस संगठन ने ठीक काम किया। संस्कृत भाषा और संस्कृति के उत्कर्ष का यह स्वर्णिम काल रहा।

दैवदुर्योग से हमारा धार्मिक संगठन जब शिथिल हो गया और देश के शासक वीर क्षत्रिय इधर-उधर बिखर गये। भारत में कोई सार्वभौम सम्राट् शासक न रह गया। राजे-महाराजे स्वतन्त्र हो गये, देश यवनाक्रान्त हो गया और तभी राम कृष्ण की भांति राणा प्रताप और वीर शिवाजी ने हमारी रक्षार्थ युद्ध किया। वैदिक धर्म की रक्षा के लिए सिख धर्म का उदय हुआ। गुरु नानक देव के धर्मोपदेश एवं गुरु गोविन्द सिंह व उनके पुत्रों के महान् बलिदान ने देश में एक स्फूर्ति उत्पन्न कर दी, वीर बन्दा वैरागी, महारानी पद्मिनी, वीर हकीकत राय आदि इसी परम्परा में शस्त्र बल से धर्म रक्षा के कारण बने। स्त्रियों ने अपनी मानमर्यादा की रक्षा के लिये अपनी कुन्दन-सी काया हँसते-हँसते प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं को समर्पित करके जौहर व्रत का पालन किया। मनों की तादाद में जनेऊ तोड़े गये, जबरन चोटियाँ काटी गयीं और बलात् धर्म परिवर्तन कराया गया। बराबर युद्ध करते रहने पर भी देश की जनता निराश और असहाय होती गयी।

उसी समय महाकवि सूर ने और महाकवि तुलसी ने कृष्ण भक्ति एवं रामभक्ति का उपदेश देकर भगवान् को पुकार कर उनकी शरण में जाने का उपदेश देकर हिन्दुओं के मन में आशा का संचार किया। समाज में भक्ति-ज्ञान-वैराग्य की धारा के साथ-साथ वर्णाश्रम धर्म की स्थापना में इन व अन्य तत्कालीन सन्तों ने बड़ा योग दान दिया।

मुस्लिम शासकों, सिखों एवं मराठा तथा राजस्थान के राजपूत राजाओं के परस्पर मतभेद से लाभ उठाकर अपनी कूटनीति के सहारे ब्रिटिश साम्राज्य का पंजा भारत में जम गया जिसे उखाड़ने के लिए महारानी झांसी, वीर तांत्याटोपे आदि महापुरुषों ने महान् संघर्ष किया, सन् सत्तावन (१८५७) की क्रान्ति (गदर) तथा बाद में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया, जिसकी परिणति भारत-स्वातन्त्र्य के रूप में सन् १९४७ में हुयी, पर वह स्वाधीनता अंग्रेजों की कूटनीति के रूप में देश के दोनों हाथों को काटकर के दी गयी।

अंग्रेजों के शासन काल में हमारी रीति नीति को प्रभावित करने के लिए लार्ड मेकाले की योजनानुसार भारतीयों की शिक्षा पद्धति में मौलिक परिवर्तन किया गया और अद्यावधि वह विषैली योजना हमारे आचार-विचार सबको प्रभावित करती जा रही है। विशेष रूप से समाज के खान-पान, जिसके कारण हमारा सांस्कृतिक ह्रास तीव्रगति से हो रहा है। देश में मत-मतान्तर फैलने लगे। ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज जैसी सुधारवादी संस्थाओं का उदय हुआ एवं शासन द्वारा सती प्रथा उन्मूलन कानून, शारदाएक्ट् जैसे कानूनों द्वारा हिन्दुओं की सामाजिक मर्यादा एवं धार्मिक संस्कारों में हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। तो देश के सनातन धर्मी संस्थाओं के संगठन और आर्य समाज के साथ शास्त्रार्थ द्वारा वैदिक धार्मिक सिद्धान्त के निरूपण की परम्परा धर्म रक्षार्थ प्रारम्भ हुयी। इसी परम्परा में पण्डित दीन दयालु व्याख्या

वाचस्पति, श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी, श्री स्वामी दयानन्द जी, पं० कालूराम जी, पं० अखिलानन्द जी, महामहोपध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, शास्त्रार्थ महारथी पं० माधवाचार्य शास्त्री, पं० देवनायकाचार्य जी प्रभृति का नाम उल्लेखनीय है। संस्थाओं में भारत धर्म महामण्डल, वर्णाश्रम स्वराज्य संघ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के प्रतिनिधियों ने देश की व्यवस्थापिका सभा में धर्मघातक कानूनों के प्रतिरोध में संघर्ष किया और लन्दन के गोल मेज सम्मेलन में भी जाकर धर्म रक्षा की मांगकर वैदिक सनातन धर्म का पक्ष प्रस्तुत किया।

अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित भारतीय हिन्दु समाज में फैलती धर्महीनता एवं नास्तिकता के प्रबल वेग को रोकने की जो आवश्यकता देश के विचारक अनुभव कर रहे थे—उसकी पूर्त्यर्थ आध्यात्मिक जगत् की अज्ञात दैवी प्रेरणा से, इस बीसवीं सदी में आद्य शंकराचार्य के अंशावतार अभिनव शंकर श्री स्वामी करपात्री जी महाराज का प्रादुर्भाव हुआ। बाल्मीकि महर्षि के अंशावतार और राम कथा गायक श्री तुलसी के ४०० वर्ष बाद यह महापुरुष देश धर्म की रक्षा के लिए अवतरित हुए। पूरे ५० वर्ष तक इन्होंने धर्म रक्षा का अथक प्रयास किया।

वेद के प्रचार का घोष तो बहुत हो रहा था, पर कार्य सारे अवैदिक हो रहे थे। वेद के माहात्म्य को समझना और उन पर आचरण करना प्रायः लोग छोड़ते जा रहे थे, ऐसे समय में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के अवतार श्री करपात्री जी महाराज ने वेदों के उद्धार का कार्य किया। वेदों पर एवं अन्य पुराणों पर, राम और कृष्ण पर जो भी आक्षेप किये जा रहे थे, उनका मुंह तोड़ उत्तर श्री स्वामी जी ने बड़ी निर्भीकता से दिया। देश की स्वतन्त्रता के लिए दैवी अनुष्ठान—यज्ञ यागादिक की परम्परा चलायी। धर्म संघ की शाखाओं की स्थापना सारे देश में पैदल भ्रमण करके की और धर्म रक्षा की भावना भारतीय जनमानस में भर दी। अंग्रेजों ने १९४७ में भारत को खण्ड-खण्ड करके स्वाधीनता देनी चाही और देश के नेताओं ने उसे स्वीकार करना चाहा तभी भारत अखण्ड हो, विधानशास्त्रीय हो, मन्दिरों की मर्यादा सुरक्षित रहे, कानूनन धर्म में हस्तक्षेप न हो, के नारे के साथ धर्मयुद्ध प्रारम्भ कर दिया और लोग जेलों में गये। स्वयं स्वामी जी ने अनेक बार जेल यात्राएँ की। परन्तु युगबल विपरीत होने के कारण सफलता नहीं मिली, सारांश यह कि जीवन के ५० वर्ष उन्होंने धर्म रक्षार्थ प्रयत्न में ही व्यतीत किए।

श्री चरण परमविरक्त होते हुए श्रीकृष्ण के भक्त एवं भागवत की रासपञ्चाध्यायी के अद्भुत व्याख्याता थे। जब इसकी व्याख्या में वे भावविभोर हो जाते थे, तब उनका वास्तविक भक्त स्वरूप परिलक्षित होता था। कानपुर की परेट की पुरानी रामलीला कमेटी को श्री चरणों की स्वीकृति लेने में सफलता नहीं हुयी। तब कानपुर धर्मसंघ के मंत्री श्री पं० गणेश शंकर जी शुक्ल श्री महाराज के पास गये। इनको श्री पंडित शिवकुमार जी त्रिवेदी की प्रेरणा थी।

हजारी बाग में चैत्र नवरात्र का प्रोग्राम पूर्व निश्चित था, पर श्री शुक्ल जी पर अहैतुकी कृपा करके कानपुर आने का वचन दिया। यह कार्यक्रम ५ अप्रैल ८१ से ८ अप्रैल ८१ तक चार दिन तक चला, जिसमें रास पञ्चाध्यायी की भूमिका मात्र संक्षेप में श्री चरणों ने बतायी, जो उनके टेप से यहां अक्षरशः, उद्घृत है। इसमें उनकी भाषण शैली को यथावत् दर्शाने के लिए उसी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तीव्र और लंबी बीमारी के बाद पीयूषपाणि आयुर्वेदाचार्य श्री पं० ब्रजमोहन दीक्षित वैद्य से स्वास्थ्य लाभ कर १६ नवम्बर ८१ को अपने भक्तों तथा अपनी स्थापित संस्थाओं के कर्मठ सदस्यों का आह्वान कर श्री केदार घाट स्थित निवास में सबसे भविष्य में धर्मसंघ के स्थायी अध्यक्ष अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी निरञ्जन देवतीर्थजी पुरी पीठाधीश्वर के नेतृत्व में आगे कार्य करने का आदेश दिया। उस समय उपस्थित लगभग ६० व्यक्तियों ने पुरी पीठाधीश्वर को एक स्वर से अपना नेता माना और धर्मसंघ आदि संस्थाओं का कार्य यथावत् चलाने का संकल्प लिया। सबने हस्ताक्षर करके अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया। पूज्य श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के भक्तों को धर्म सम्राट के मुखारविन्द से विस्तृत वाणी को 'पिवत भागवतं रसमालयम्' के द्वितीय संस्करण के रूप में सौंपते हुए हम सन्तोष एवं हर्ष का अनुभव करते हुए भक्त पाठकों से इसके अध्ययन द्वारा आध्यात्मिक लाभ उठाने की कामना करते है।

श्यामसुन्दर वाजपेयी
अध्यक्ष

कृष्ण प्रसाद शर्मा
कार्यकारी अध्यक्ष

आद्य श्री शंकराचार्य जयन्ती
बैशाख शुक्ल पंचमी
वि० सं० २०५३ (२३-४-९६)

विषय सूची



भक्ति-ज्ञान-वैराग्य के साक्षात् विग्रह
यतिचक्र चूड़ामणि धर्म सम्राट् अनन्त श्री विभूषित ब्रह्मरूप
श्री स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती
स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
(श्री चरणों का अन्तिम प्रसाद)

पिबत भागवतं रसमालयम्

श्री शुक उवाच

ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय
भक्तजनमानसनिवासाय श्री राम चन्द्राय।
विश्वसर्गविसर्गादि नवलक्षणलक्षितम्।
श्री कृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत्॥
वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम्॥
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो। प्राणियों में सद्भावना हो। विश्वका कल्याण हो। गो हत्या बन्द हो। गो माता की जय हो। **हर हर महादेव।**

'रास पंचाध्यायी' को श्रीमद्भागवत का सार कहते हैं। इसमें परात्पर परब्रह्म की महिमा वर्णित है। निगमरूपी कल्पतरु का फल है भागवत।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्। शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिवत भागवतं रसमालयम्। मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

जैसे आम्र का वृक्ष होता है, उसमें मुख्य फल आम्र होता है। फल भी अपने आप परिपक्व होकर निपतित हुआ हो तथापि इसका शुकतुण्ड—संस्पृष्ट हो, तोता की चोंच लगा हो, तो उसकी मिठास के रस का पारावार नहीं। श्रीमद्भागवत निगमरूपी कल्पवृक्ष का फल है। अंकुर, नाल, स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा, पत्र, मुकुल, बौर में वह चमत्कार नहीं, जो कल्पवृक्ष के फल में है। सामान्य फल नहीं, निगमकल्पतरु का फल है। कल्पवृक्ष विविध प्रकार का भोग पदार्थ दे सकता है, अप्सरायें दे सकता है, अमृतकुण्ड दे सकता है और नाना प्रकार की भोग सामग्री प्रदान कर सकता है। उससे कहो कि मोक्ष दे दो तो कल्पतरु मोक्ष नहीं दे सकता। अक्षर ब्रह्म, सर्वांतरात्मा सर्वशक्तिमान् भगवान् को उनका हाथ पकड़ा दो, तो यह सामर्थ्य कल्पवृक्ष में नहीं है। तभी तो देवता लोग स्पृहा करते रहते हैं, भारतवर्ष के सौभाग्य की—

"अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुतस्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे, मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि न ॥"

इन भारतवासियों ने कौन सा दिव्य, पुण्य कर्म किया है, जिससे इन्हें अकारण करुण, करुणा-वरुणालय, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् भगवान् की प्राप्ति होती है, इन्हें जो भारतवर्ष में जन्म दिया है, जिससे यहाँ पर भगवान् की आराधना करके और अमृतपद परमपद,

सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश परब्रह्म को अनायास प्राप्त कर लेते है।। यह देवलोक में नहीं, तभी देवता लोग इस प्रकार की स्पृहा करते हैं। यदि कल्पवृक्ष में मोक्ष प्रदान करने की सामर्थ्य होती, कल्पवृक्ष में भगवत्पद देने की शक्ति होती, तो ऐसी स्पृहा देवता न करते। इसलिए निगम ही ऐसा है। वेद अनादि अपौरुषेय मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद ही धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों को दे सकता है। धर्म तत्त्व की प्राप्ति वेद से हो सकती है, अर्थ की प्राप्ति वेद से हो सकती है, सब कुछ वेद से मिल सकता है। सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधिष्ठान् परब्रह्म, परमात्मा की प्राप्ति वेद से होती है।

'यन्नावेदविन्मनुते'

उस परात्पर परब्रह्म परमात्मा को अवेदविद् नहीं जान सकता। अगणितविद् उस परम तत्व को नहीं समझ सकता। इसलिये कहा है–

'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय॥'

परात्पर परमतत्व को जानकर ही प्राणी अमृतपद को प्राप्त हो जाता है और वेदादि से वेदान्त भाष्यों के द्वारा ही ब्रह्मात्मपद का साक्षात्कार होता है। इसलिए–''तन्त्वौपनिषद् पुरुषं पृच्छामि'' इत्यादि वचनों में औपनिषद् विशेषण लगाया जाता है और आलोकादि सहकारी शक्ति साधनों से रूप का बोध होता है। ठीक परब्रह्म का बोध वेद से ही होता है और अन्य किसी प्रमाण से भी नहीं होता। प्रज्ञा एवं उपलब्ध चक्षुओं से ही रूप का बोध होता है और किसी भी साधन से नहीं और निर्दोषचक्षु से मन संयुक्त आलोकादि से जैसे रूप का बोध होता है, ऐसे ही उपनिषद् आदि से ही परात्पर परब्रह्म का बोध होता है 'नान्यत':। और साधनचतुष्टयसम्पन्न जिज्ञासु के द्वारा उपक्रम उपसंहारादि षड्विध लिङ्ग से विचार्यमाण उपनिषदों से अवश्य ही परात्पर परब्रह्म का बोध होता है। अतः परब्रह्म का वेद से असाधारण सम्बन्ध सिद्ध होता है· ''तं त्वौपदंपुरुषं पृच्छामि।''

तो इस तरह से वेद धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों का देने वाला है। इसी कल्पवृक्ष का श्रीमद्भागवत फल है। वह फल निगम कल्पतरु का परिपक्व फल है जो स्वयं परिपक्व होता है, मसाला डालकर नहीं पकाया गया है। स्वयं परिपक्व फल है–फिर शुकतुण्डसंस्पृष्ट है। महान् योगीन्द्र तत्वज्ञ अमलात्मा, परमहंस शुकदेव जी महाराज के मुखारविन्द से गिरा है, निकला है अतः शुकतुण्ड संस्पृष्ट होने से इसकी महिमा और बढ़ गयी।

पहले बताया गया कि 'श्री शुक उवाच' सम्पूर्ण श्रीमद् भागवत इस वृक्ष का, (निगम कल्प वृक्ष) का मधुर फल है; शुकतुण्डसंस्पृष्ट फल है। इसलिये कहा कि 'पिवत' इसको पियो। अरे भई! फल पीने का नहीं होता, चूसने व खाने का होता है। बोले! वह फल चूसने का होता है, जिसमें कुछ त्यागने को होता है; बकला, गुठली आदि जिसमें त्याज्य अंश होता है, वह चूसने का होता है वह चूसा जाता है। इसमें त्याज्य अंश कुछ है ही नहीं इसलिये कहा 'पिवत'–इस रसात्मक भागवत को पान करो–पिवत भागवतम् रसमालयम्'। कहा, कब तक पियें इसे–तो बताया कि 'आलयम्'। मोक्ष पद प्राप्त कर लेने के बाद भी भगवत्चरितामृत का रसास्वादन किया जाता है। प्रायेण मुनयो राजन् निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः।'

तत्त्वदर्शीगण मुनीन्द्र, योगीन्द्र, अमलात्मा, परमहंस, ब्रह्मविद्वरिष्ठ मोक्ष पाने पर भी ब्रह्मात्म का साक्षात्कार कर लेने पर भी भगवान् के गुणगणों के वर्णन में रमण करते हैं। 'जीवन मुक्त, महा मुनि जेहीं। हरिगुण सुनत अघात न तेहीं।' जीवन मुक्त हैं महामुनि हैं वह भी भगवान् के गुण गान का रसास्वादन करते रहते हैं। इसीलिये कहा गया है—'रसमालयम्'। मोक्ष पाने के बाद भी भगवद् गुणगान का रसामृत पान करते रहते हैं। तो इसमें त्याज्य अंश कुछ नहीं है उस श्रीमद्भागवत में भी—

अत्र सर्गा विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥

सर्ग विसर्गोऽपि दश लक्षण पुराणों का है। पंच लक्षण पुराण भी है।

भूत की सृष्टि, भौतिकी प्रपंच की सृष्टि, 'सर्गो विसर्गश्च'' पुराणों में पोषण का वर्णन, पालन का वर्णन, भगवान् की लीलाओं का वर्णन है। मुक्ति का वर्णन है। अन्त में मुक्तोपसृत्य का वर्णन, कि मुक्त लोग कहां जाते हैं?—तो दश लक्षण पुराण के होते हैं "दशमे दशमों हरिः"—सर्ग का वर्णन, विसर्ग का वर्णन, स्थान का वर्णन, पोषण का वर्णन के बाद अन्त में मुक्ति का वर्णन और भी अन्त में मुक्ति का आश्रय जो परात्पर परब्रह्म दशम तत्त्व है उसका वर्णन है।

तो कहा कि दशमे दशमो हरिः—तो अन्तमें श्रीमद् भागवत के दशवें स्कन्ध में दशवें तत्त्व का वर्णन है। दशवाँ तत्त्व जो आश्रय है, साक्षात् श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द श्यामसुन्दर मदन मोहन का मंगलमय स्वरूप ही है और जैसे शरीर में प्राण होता है, ऐसे ही रासपंचाध्यायी प्राण है भागवत का। तो दशमस्कन्ध में परात्पर परब्रह्म का वर्णन उसमें भी उस परम तत्त्व का जो प्राण-स्थानीय है, वह 'रासपंचाध्यायी' है।

इसलिये आरम्भ में 'श्री शुकदेव उवाच' कहा—श्री शुक महाराज बोले अर्थात् जान लेना चाहिये, कि रासपंचाध्यायी में कोई ग्राम्यगीत का वर्णन नहीं है। ग्राम्यलीलाओं का वर्णन नहीं है। इसके वक्ता महामुनीन्द्र योगीन्द्र परमहंस अमलात्मा, तत्वदर्शी, ब्रह्मविद् वरिष्ठ श्री शुकदेव जी महाराज हैं। शुकदेव भी महाराज व्यास जी के पुत्र। व्यास जी ने बड़ी तपस्या की उनकी प्राप्ति के लिये।

"यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यम्। द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥"

शुक जो मंगलाचरण करते हैं, वह जन्म लेते ही सर्व परित्याग कर देते हैं। उपनयनादि संस्कार रहित। उन्हें उपनयनादि संस्कार की भी अपेक्षा नहीं। संस्कार की बड़ी महिमा है। 'मलापनयन' संस्कार है। 'अतिशयाधान' संस्कार है। मलापनयन को संस्कार कहते हैं, अतिशयाधान को संस्कार कहते हैं। माता-पिता के शुक्र-शोणित से उत्पन्न जो शरीर होता है, उस शरीर में कुछ मातृज दोष होते हैं, कुछ पितृज दोष होते हैं। इन दोनों का निराकरण करने के लिये संस्कार करते हैं। गर्भाधान भी हमारे यहाँ संस्कार है, वह केवल मनमानी कुछ अनर्गल व्यापार नहीं है। गर्भाधान भी संस्कार है। अमुक अमुक आचमन, प्राणायाम,

ध्यान-धारणा, समाधि, चिन्तन के अनन्तर और दिव्य सन्तान की उत्पत्ति के लिये पिता माता गर्भाधान करता है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण आदि षोडश संस्कार हैं और अन्त में वेदों के अनुसार अष्टचत्वारिंशत् (अड़तालीस) संस्कार हैं। इन सभी संस्कारों द्वारा क्या होता है? 'महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।'',

ब्रह्म प्राप्ति योग्य शरीर बनता है। ब्रह्म प्राप्ति योग्य शरीर का बनाना ही संस्कार का उद्देश्य है। अग्नि होत्र, दर्श-पौर्णमास, चातुर्मास, ज्योतिष्टोम, आपस्तोम आदि बड़े-बड़े जितने भी यज्ञ हैं, सब यज्ञों का परम उद्देश्य है कि शरीर भगवत्पदप्राप्ति के योग्य बन जाय। यह संस्कारों से ही होता है। हीरा खान से पैदा हुआ तब मिट्टी जैसा होता है। जब उसका मलापनयन, अतिशयाधान किया जाता है, तब चमत्कार हो जाता है, और तब 'नृप किरीट, तरुणी तनु पाई'—राजा के मुकुट में या तरुणी के अंग में वह अलंकार बनकर, शोभा बनकर, विराजमान होता है। ऐसे ही नाना प्रकार के रत्न सब सामान्य रूपों में तो होते हैं। संस्कारों के द्वारा ही उनसे ही मलापनयन होता है, अतिशयाधान होता है, तब चमत्कार होता है। ऐसे ही ब्राह्मण से ब्राह्मणी में, क्षत्रिय से क्षत्रियाणी में पहले सन्तान उत्पन्न हुआ तो उसमें भी पहले तो सामान्यतया वह जन्तु है जन्तु। तो संस्कार हुआ, मलापनयन हुआ, अतिशयाधान हुआ उपनयनादि संस्कारों से संस्कारित हुआ तब तेज, ओज, तप बल आता है, वीर्य, वैभव, शक्ति आर्तव यह सब गुण आते हैं। इसलिये संस्कारों की अपेक्षा है, परन्तु श्री शुकदेव जी महाराज तो नित्य पूत हैं स्वयं परमपवित्र हैं—उपनयनादि संस्कार बिना भी स्वतः परमपवित्र हैं, मलविहीन हैं, शुद्ध हैं। वे 'सर्व परित्यज्य गच्छत'—लोकेषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा से विनिर्मुक्त होकर अरण्य की ओर चल पड़े।

व्यास जी महाराज ने न चाहने पर भी उपनयन आदि कराया, तो भी जो उपनयनादि सम्बन्धी क्रिया कलाप से उपरत थे। उन्हें समिधादान करना चाहिये था, सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्म करना चाहिये था, अग्निशुश्रूषा करना चाहिये था, गुरु शुश्रूषा करना चाहिये था—सो कुछ नहीं किया 'अपेत कृत्यं'—सब प्रकार के कृत्यों से रहित सर्वकार्यकलापों से उपरत होकर सीधे व्यास जी के आग्रह करने पर भी नाल छेदन से भी पूर्व एकदम अरण्य की ओर चल पड़े। तो आगे-आगे शुकदेव जी महाराज चले जा रहे हैं और पीछे-पीछे व्यास जी महाराज—हे पुत्र! हे पुत्र!! कहते-कहते चले जा रहे थे। तो कहते हैं कि वृक्षों में से और पहाड़ों में से उसकी प्रतिध्वनि हे पुत्र! हे पुत्र!! आने लगी। मानो जैसे ऋषिकेश में मायाकुण्ड पर जाकर बोलो 'गंगे' तो उस आवाज की प्रतिध्वनि आयेगी 'गंगे'। तो व्यास जी हे पुत्र। हे पुत्र!! कहते हुए जब अरण्य में चले जा रहे थे, तो उसकी प्रतिध्वनि उसी रूप में वृक्षों-पर्वतों से आने लगी, हे पुत्र! हे पुत्र!! मानों भगवान् शुकदेव जी महाराज वृक्षों-पर्वतों की अन्तरात्मा बनकर अपने पिता व्यास जी महाराज को उपदेश करते हैं कि हे पुत्र! आप हमें कहते है ? पुत्र हम भी आपको कहते हैं—हे पुत्र! इसका मतलब क्या? मतलब यह कि पुत्र-पिता का नाता गौण है—मुख्य नहीं। न जाने कितनी बार आप हमारे पुत्र हुए होंगे। इस मायिक सम्बन्ध से पिताजी दृष्टि हटालो। यह पुत्रेति तन्मयतया सर्वभूतानाम् तन्मयतया भूत दृश्य

सर्वभूमतानां–

सर्व भूतों के मन में जो प्राप्त हो गये–सर्वान्तरात्मा हो गये, वे सर्वात्मा बनकर वृक्षों और पर्वतों से जो प्रतिध्वनि निकलती है, उसके ब्याज से अपने पिता को आश्वासन देते हैं, उपदेश देते हैं–तो इस प्रकार शुकदेव जी चले जा रहे थे अरण्य की ओर तो कहते हैं आगे सरोवर में कुछ अप्सरायें स्नान कर रही थीं, नग्न होकर जल क्रीड़ा कर रहीं थीं। शुकदेव महाराज निकल गये, उनके सामने से वह क्रीडा करती रहीं, पर जब पीछे से व्यास भगवान् आये तो व्यास जी को देखकर लज्जित होकर अपना अपना वस्त्र परिधान करके एक किनारे पर सुकड़कर बैठ गयीं। मुनि ने पूछा अप्सराओं तुम बड़ी विचित्र हो। हमारा पुत्र तो युवक है।

बहुत प्रसिद्ध बात है कि बारह वर्ष तक मां के पेट ही में रहे। इनकी कहानी प्रसिद्ध है, कि कहीं भगवान् भूत भावन सदा शिव शंकर पार्वतीजी को अमरकथा सुना रहे थे। अमर कथा सुना रहे थे तो वह समाधिस्थ हो गयीं। पार्वती जी समाधिस्थ हो गयीं, तो वहाँ कोई शुक का अण्डा था। तोता का अण्डा था उसने सुन लिया। वह हूं हूं हुन्कारी भरने लगा। तो बाद में परिज्ञान हुआ, तो उसको मारने के लिये जब त्रिशूल उठाया, तो भागते-भागते वह कहीं व्यास पत्नि सूर्य का उपस्थान कर रही थीं उनके मुख में सन्निविष्ट हो गया। तब बहुत दिनों तक १२ वर्ष तक माँ के पेट में रहा। पिता जी ने कई बार कहा, बाहर निकलो तो कहा कि नहीं हम यहाँ ही अच्छे हैं, ठीक हैं। गर्भवास सबके लिये महा दुखदायी है, तो भी यह गर्भवास ज्ञान का हेतु है। यहाँ हमें पूर्णज्ञान है। मायिक पदार्थों का ज्ञान है। सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश परात्पर परब्रह्म का ज्ञान है। तो बाहर उस अज्ञानान्धकार में जाने की अपेक्षा यहाँ हम भले–यदि बहुत दुख भी होता तो भी यहाँ ही ठीक हैं। बहुत आग्रह पर फिर जब बाहर निकले भी, तो 'सर्वं' परित्यज्य गच्छन्तम्–अरण्य को चल दिए।

तो व्यास जी ने कहा अप्सराओं हमारा पुत्र कितना सुन्दर तेजोमय, प्रकाशमय युवक है, उसको देखकर तो तुम स्नान करती रहीं और हम वृद्ध हैं हम वल्कल वसनधारी, जटिल शमश्रुल वृद्ध हमको देखकर तुमने लज्जित होकर वस्त्र परिधान क्यों कर लिया?

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नम्। देव्यौ ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम्।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति। स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्त दृष्टेः॥

मुनि ने पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया आप महा मुनीन्द्र हैं। तत्वदर्शी हैं। वल्कल वसनधारी हैं। कन्दमूलफलाशी हैं। शश्मश्रुल, जटिल हैं, वृद्ध हैं, परन्तु आपको स्त्री पुरुष का भेद मालूम है। आप जानते हैं कि क्या स्त्री होती है? क्या पुरुष होता है? परन्तु आपका पुत्र तो विशुद्ध ब्रह्मविद् वरिष्ठ है, सिवाय ब्रह्म के और दूसरी वस्तु तो उसकी बुद्धि में प्रस्फुटित होती ही नहीं। दृश्य प्रपंच उसकी बुद्धि में आता ही नहीं। निर्दृश्य-द्रव्य निर्भास्य अखण्ड भान ही उसकी बुद्धि से प्रतिक्षण प्रस्फुटित होता है। दृश्य पर उसकी दृष्टि ही नहीं है, तो जिसकी बुद्धि में स्त्री-पुरुष का भान ही नहीं, उससे हम काहे को लज्जा करतीं। हमको लज्जा तो उससे होती है, जो जानता है कि स्त्री क्या होती है तो आप भले ही वल्कल वसनधारी हों,

भले ही कन्दमूल फलाशी हों, श्मश्रुल हों, जटिल हों, वृद्ध हों, तो भी आपको स्त्री पुंभिदा है—न तु सुतस्य विविक्त दृष्टेः। विविक्तदृष्टि जो आपका पुत्र है उसको 'स्त्रीपुंभिदा है ही नहीं। ऐसे महान् तत्वविद्, ज्ञानी ब्रह्मविद्वरिष्ठ शुकदेव जी महाराज हैं, वे इस कथा के प्रवक्ता हैं। इसलिये इससे इस कथा में कोई ग्राम्य कथा नहीं, संसार की कोई कथा नहीं। परात्पर परब्रह्म सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण की ही कथा है और इसलिये आप यह तो जानते ही हैं, कि दुनिया के जन्म-कर्म की कथा जन्म-कर्म के बन्धनों में डाल देती है और भगवान् के जन्म कर्मों की कथा जन्म कर्म के बन्धनों को छुड़ा देती है। आप कहेंगे कि इसमें क्या भेद है अरे भाई भेद है! गंगाजल और जल, इतर जल और गंगाजल दोनों एक? एक तो नहीं हैं। बहुत जलों को छोड़कर लोग गंगास्नान को जाते हैं। कई नदियों को पारकर गंगा नहाने जाते हैं। अगर कहें, कि जल जल समान हैं तो वहीं नहाकर लौट आयें। इसलिये जल जल सब समान नहीं है। गंगाजल गंगाजल है। अरे जैसे 'राम राम' और 'टांय टांय' में भेद है, ऐसे ही सामान्य जल और गंगा जल में महान् भेद है। ऐसे ही दुनिया के जन्म-कर्म की कथा और भगवान् के जन्म कर्म की कथा में महान् भेद है। दुनिया के जन्म-कर्म की कथा जन्म-कर्म के बन्धन में डालने वाली है तथा भगवान् के जन्म-कर्म की कथा संसार के जन्म-कर्म के बन्धन से छुड़ाने वाली है। गीता कहती है कि **''जन्म-कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥''** भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि हमारे जन्म कर्म की जो कथा सुनता है, वह जन्म-कर्म के बन्धन से विनिमुर्क्त होकर परात्पर परब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। इस तरह से भगवान् के जन्म-कर्म की कथा साक्षात् भगवान् का स्वरूप ही है। इसीलिये प्रसिद्ध है कि शुकदेव जी महाराज राजा परिक्षित को कथा कहने लगे, तो देवता आये। देवताओं ने कहा कि हम अमृत प्रदान करते हैं आप राजा परीक्षित को अमृत पिला दीजिये, हमको आप कथामृत प्रदान कीजिये। अमृत से कथामृत का बदला कर लीजिये। विनिमय कर लीजिये। तो शुक ने कहा 'क्व कथा क्व सुधा लोके क्व काचः क्व मणिर्महान्' कहां कथा कहां सुधा, कहां कांच कहां मणि? जैसे कांच और मणि की तुलना नहीं की जा सकती। इसी प्रकार देवताओं के अमृत तथा कथामृत की क्या समानता? तो शुकदेव जी महाराज ने इसी कारण देवताओं के अमृत का तिरस्कार कर दिया।

भगवत्कथामृत साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है उसका गुणगान करना, मनन करना, विचार करना, साक्षात् सच्चिदानन्दघन परात्पर, परब्रह्म का अनुभव करना है। इसीलिये यह जन्म-कर्म के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाली है।

तो सज्जनों! इस तरह से शुकदेव जी महाराज के मुखारविन्द से निगम कल्पतरु का जो परिपक्व फल है उसका वर्णन हुआ। यह वर्णन राजा परीक्षित के कल्याण के लिये किया, तो यद्यपि राजा परीक्षित के जन्म से पहले भीष्म जी का और धर्मराज युधिष्ठिर का संवाद हुआ था, उससे ही शुकदेव जी महाराज की मुक्ति हो चुकी थी। शुकदेव जी महाराज मुक्त हो चुके। वह ज्ञानी होकर सशरीर योग बल से लोक-लोकान्तरों में जाकर और सर्व त्याग पूर्वक परात्पर परब्रह्मधाम में लीन हो गये। युधिष्ठिर ने पूछा, फिर कहां कहां गये? उन्होंने

कहा कि आकाश में उड़ते हुये पक्षी का पदचिन्ह आप जानते हैं जल में तैरती मछली का पदचिन्ह आपको विदित होता है? जब आकाश में उड़ते हुए पक्षी का पदचिन्ह का और जल में तैरती मछली का पदचिन्ह नहीं विदित होता, तो ऐसे ही सर्वान्तरात्मा, सर्व दृष्टा अदृश्य भाव को प्राप्त महाराज शुकदेव जी का हम क्या चिन्ह बतायें। इस प्रकार वह मुक्तभाव को प्राप्त हो गये। इस तरह फिर भी राजा परीक्षित के कल्याण के लिये उनका पुनः प्रादुर्भाव हुआ। एक जो नृसिंह तापनी उपनिषद् है उसमें भगवान् शंकराचार्य का भाष्य है—उन्होंने लिखा है वहां, कि 'मुक्ताश्च लीलया विग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ति'—मुक्त भी लीला से विग्रह धारण करके भगवान् को भजते हैं। इस तरह से मुक्त, महामुनीन्द्र, योगीन्द्र, ब्रह्मविद्वरिष्ठ, तत्वदर्शी, अमलात्मा, परमहंस भगवान् शुकदेव जी महाराज राजा परीक्षित के कल्याण के लिये भगवद् भावापन्न होने पर भी पुनः प्रगट हो गये, उनके कल्याण के लिये। इस तरह से भगवान् शुकदेव जी उत्कृष्ट अधिकारी हैं।

एक दूसरी दृष्टि और भी है 'शुक' माने तोता। कहाँ का तोता? तो राधारानी का तोता। वृषभानुनन्दिनी नित्यनिकुंजेश्वरी उनके निकुंज का जो शुक है आनन्द वृन्दावन चम्पू की कथा है कि राधारानी वृषभानुनन्दिनी के नित्य निकुंज में वर्तमान स्वर्णमय पजंर में सर्वांग नाम शुक था। महारानी राधारानी अपनेमन बहलाव के लिये कभी-कभी उस शुक को अपने हाथ पर विराजमान कर लेती। एक हाथ से दाड़िम खिलाती है, अनार का बीज खिलाती है और स्नेह से उसके चंचु चुम्बन करती हुई उसका कृष्ण पाठ पढ़ाती जाती है कि 'कृष्णं वद, कृष्णं वद, वत्स कृष्णं वद। दाड़िम खिलाती जाती है और श्री कृष्ण के मंगलमय नाम का पाठ पढ़ाती जाती है। कभी-कभी श्री कृष्ण आजाते हैं और वह कहते हैं कि देखो! राधा कृष्ण कहो राधा-कृष्ण कहो—

"गौर तेजोबिना यस्तुश्याम तेजः समर्चयेत्।
जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकीशिवे।"

भगवान् शंकर जी कहते हैं कि गौर तेज को छोड़कर जो केवल श्याम तेज को पूजा करता है वह पातकी होता है। केवल 'राधा केवल कृष्ण' कहने से ठीक नहीं है। 'राधा' भी कहो। गौर तेज समन्वित श्याम तेज का चिन्तन करो। केवल श्याम तेज का चिन्तन करने से पाप होता है। राधा कृष्ण कहो राधा कृष्ण कहो तो राधा रानी फिर उसको बाद में फिर डाटती हैं कि—

'कृष्णं पठु, कृष्णं पठु, राधाकहुमतिरे'

राधा मत कहो, कृष्ण कहो। वह व्यवहारिक दृष्टि है। व्यवहारिक दृष्टि में अकस्मात् एक दिन राधारानी के मुखारविन्द से एक श्लोक निकल गया।

'दुरापजन वर्त्तिनीरतिरपत्रपा भूयसी। गुरूक्ति विष वर्षणैर्मतिरतीव दौस्थ्यंयगता।
वपुः परवशं जनिः परमिदं कुलीनान्वये, न जीवति तथापि किं परम्दुर्मरोऽयं जनः॥

श्लोक शुक ने कण्ठ कर लिया। राधारानी के मुखारविन्द से श्लोक निकला। महाप्राज्ञ कलवांग नामक शुक ने इसे कण्ठ कर लिया और कण्ठ करके उड़ गया। श्रीकृष्ण चन्द्र श्याम

सुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन के मंगलमय नन्दभवन में पहुंचा और वहां बोला—"दुरापजन वर्त्तिनी रतिः' इसी श्लोक को पढ़ा। श्री कृष्ण श्याम सुन्दर मदन मोहन अपने मधुमंगल सखा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसका श्लोक सुनकर बोले अहो सखे! यह किसी महान रागिणी का तोता है। श्री कृष्ण ने उसका स्वागत किया। शुक शाखा से उड़कर श्री कृष्ण हस्तारविन्द पर बैठ गया। श्री कृष्ण चन्द्र ने पुनः श्लोक पढ़ने को कहा, कि 'श्लोकम् पठ'। तो शुक ने फिर वही श्लोक पढ़ा दुराजपन—जनः।" श्लोक राधारानी का हृदय था। राधारानी कहती है कि क्या करूँ मेरे मन में प्रीति ऐसे व्यक्ति के प्रति है जो दुष्प्राप्य है जैसे रंक को चिंतामणि जैसे दुर्लभ है, ऐसे ही मेरे लिये श्री कृष्ण श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन, मदन मोहन, प्राणनाथ दुर्लभ हैं। 'दुराप जन वर्त्तिनीरतिः।" यह प्रीति का स्वभाव है कि जो जितना अधिक अन्तरंग है, उसके भगवान् उतने ही दुर्लभ होते-होते चले जाते हैं। राधारानी क्या हैं? कई लोग कहते हैं। जैसे समुद्र में तरंग ऐसे ही श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द में राधारानी। (हित हरिवंश) वृन्दावन धाम के राधा बल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य हित हरिवंश, वह तो कहते हैं 'दोऊ तरंग दोऊ जल'। राधा तरंग है तो श्री कृष्ण जल हैं। श्री कृष्ण जल हैं। तो राधा तरंग कहने का मतलब उनमें कोई भेद नहीं। जल तरंग में कोई भेद नहीं। तरंग के भीतर बाहर मध्य में जल ही जल तो है फिर भी कृष्ण भगवान् को गोपाङ्गनाओं के विरह जन्य तीव्र ताप सन्तप्त देखकर उद्धव जी हँसते थे। उद्धव जी जो साक्षात् वृहस्पति के शिष्य, श्री कृष्ण के परम अन्तरंग सखा, और परम मित्र। श्री कृष्ण का राधा प्रेम गोपाङ्गना प्रेम और विरह-जन्य तीव्र ताप का अनुभव सभझकर हँसते थे। तो उनके उस अज्ञान को दूर करने के लिये भगवान् श्यामसुन्दर ने उनको अपना वार्ताहर बनाकर भेजा ब्रज में। जहां जाकर गोपाङ्गनाओं का अनन्त प्रेम देखा तो उनका भ्रम दूर हो गया। तब वो आकर श्री कृष्ण से कहने लगे कि आप बड़े निष्ठुर हैं, हम तो समझते हैं, आप बड़े अनुरागी हैं, पर लगता है, गोपाङ्गनाओं का जो लोकोत्तर प्रेम है, उसको देखते हुए आप बड़े निष्ठुर हैं। श्री कृष्ण ने कहा उद्धव तुमने अब भी समझा नहीं। तो दिव्य दृष्टि प्रदान की श्री कृष्ण ने तो उद्धव ने भी देखा।

श्री नन्ददास जी ने भी रास-पंचाध्यायी में वर्णन किया है 'तरङ्गन वारि ज्यों' तरङ्गों के बाहर भीतर मध्य में वारि भरपूर होता है। ऐसे ही सब गोपांगनाओं के अन्तःकरण में, अन्तरात्माओं में, प्राणों में, रोम-रोम में श्री कृष्ण चन्द परमानन्द कन्द श्यामसुन्दर मदनमोहन विराजमान हैं। प्रीति की बात क्या होती है? जहां व्यवधान न हो। व्यवधान की पूर्ण निवृत्ति हो। ऐसे रसिक कहते हैं कि व्यवधान दूर करने के लिये हार नहीं धारण किया जाता। प्रेयसी ने हार धारण नहीं किया और हार धारण करती है तो प्रियतम के बीच हार का व्यवधान हो जाता। इस लिए व्यवधान निवृत्ति के लिए हार धारण नहीं किया। कंचुकी का भी व्यवधान असह्य होता है। अरे! आनन्दोद्रेक में रोमांच का जो उद्गम होता है। आन्दोद्रेक में रोमांच की उद्गति होती है, प्रेमी को वह भी सह्य नहीं होती, वहाँ मणि का व्यवधान सह्य नहीं। कंचुकी का व्यवधान सह्य नहीं, रोमांच के उद्गम का व्यवधान सह नहीं। ऐसा अद्भुत सम्मिलन का उदाहरण कौन है? जल और तरङ्ग।

जल और तरङ्ग के बीच कोई व्यवधान नहीं। तरङ्ग के भीतर बाहर मध्य में अणु-अणु में जल भरपूर है। ऐसे गोपांगनाओं के अन्तःकरण में, अन्तरात्मा में, प्राणों में, रोम-रोम में श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द मदनमोहन भरपूर हैं। यह तरङ्ग और जल का उदाहरण है। इस दृष्टि से कहा है कि—'दोऊ तरङ्ग दोऊ जल'—यानी श्यामसुन्दर श्री कृष्णचन्द्र जल हो तो राधा रानी वृषभानुनन्दिनी तरङ्ग हैं। राधा रानी वृषभानुनन्दिनी जल हो तो श्री कृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द तरंङ्ग हैं। लेकिन हमारी दृष्टि में इससे भी और ऊँचा प्रेम होता है। गङ्गाजल में तरङ्ग कुछ बहिरंग होता है और गङ्गा जल की शीतलता मधुरता पवित्रता तरङ्ग से भी अन्तरंग है। आनंद सिंधु में तरङ्ग बहिरंग है और आनंदसिंधु में जो माधुर्य सार सर्वस्व है वह तरंग से अन्तरंग है। माधुर्यसार सर्वस्व परमान्तरङ्ग है। तो राधा रानी वृषभानुनंदिनी क्या है? श्री कृष्णचन्द्र परमानंदकंद आनंदसिंधु हैं तो उनमें माधुर्यसार सर्वस्व की अधिष्ठात्री राधा रानी हैं, तो जैसे गङ्गाजल की शीतलता, मधुरता, पवित्रता तरङ्ग से अंतरङ्ग है, वैसे ही आनंदसिंधु में माधुर्यसार सर्वस्व है उसकी अधिष्ठात्री जो राधा रानी है वह तो अत्यन्त अंतरङ्ग है, ऐसी है वृषभानुनंदिनी राधा रानी। जो तरङ्ग रूपा गोपाङ्गनाओं से बहुत अन्तरङ्ग हैं। तो बोलो। तरंग से जल का विप्रलम्भ होता है ? तरंग से जल का कभी वियोग होता है ?

'कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई। प्रभा जाहिं कहँ भानु बिहाई।

चन्द्रिका कभी चन्द्रमा से वियुक्त होती है? प्रभा कभी भानु से वियुक्त होती है? तरंग कभी जल से वियुक्त होती है? नहीं! तो सर्वप्रकार व्यवधान शून्य तरङ्ग और जल का सम्बंध है। लेकिन उससे भी और अन्तरङ्ग जो आनंद सिंधु माधुर्यसार सर्वस्व है वह तो अत्यंत अन्तरंग है। ऐसी राधा रानी वृषभानुनंदिनी माधुर्यसार सर्वस्व की अधिष्ठात्री हैं और उनको यह प्रतीत होता है कि 'दुरापजन वर्तिनी रतिः।' हमें जो प्रीति हुई है, ऐसे जनमें हुई जो दुरूह हो, जो दुष्प्राप्य हो। जैसे रंक को चिंतामणि दुर्लभ ऐसे ही हमें प्रतीत होता है कि जन्म जन्मांतर युग युगांतर कल्प कल्पांतर में कभी श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनंदन मदनमोहन मिलेंगे भी या नहीं—''दुरापजन वर्त्तिनी रतिः।

राधा रानी की एक सखी थी चित्रा। चित्रा ने एक दिन एक चित्र बनाया श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनंदन मदनमोहन का चित्र बनाया। चित्र लेकर आयी तो राधा रानी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई, लेकिन द्वितीय क्षण में राधा रानी रोने लगी। सखियों ने पूछा, सखी क्यों रोती है? कहा कि सखी हमारा पातिव्रत भंग हो गया। अब हमारा जीवन निरर्थक है क्योंकि हमारापातिव्रत भंग हो गया। उन्होंने पूछा कि सखी कैसे भंग हो गया? तो बोली—

एक स्वित् श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरम्।
सान्द्रोन्मादपरम्परा मुपनयत्यन्यत्र वंशी रवः।
एषः स्निग्ध घनद्युतिर्मनसिनो लग्नः पतिर्वीक्षणात्।
हा धिङ् मे पुरुषत्रये मतिरभूत् मन्ये सतित्वंगतम्

एक दिन मेरे कानों में श्री कृष्ण का नाम आया उस श्री कृष्ण का नाम का ऐसा माधुर्य, उस माधुर्य में मेरा मन मुग्ध हो गया और मेरे तन मन सर्वस्व उस श्री कृष्ण, मंगलमय नाम

में समर्पित हो गया।

श्री कृष्ण नाम का अक्षर का रसास्वादन करके मेरा मन अपना सर्वस्व अर्पण करके तल्लीन हो गया। फिर सखी एक दिन किसी के मधुर मनोहर मंगलमय मुख चन्द्र से निर्गत वेणु गीतामृत मेरे निरावरण कर्ण कुहरों में मेरे श्रवण में आया–

हमारे सान्द्र उन्माद की धारा चल पड़ी उन्माद हो गया।

अब यह चित्रा चित्र लाई है इसको देखकर इसमें मेरा मन लोट-पोट हो गया और मैं एक पतिव्रता मेरा मन तीन-तीन पुरुषों में गया। मेरा पतिव्रत भंग होगया। सखियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं बोलीं–तुम सखी बड़ी भोली हो। वह तीन-तीन नहीं, वही श्री कृष्णचंद्र परमानंदकन्द मदनमोहन ब्रजेन्द्रनंदन हैं, जिसका कृष्णनाम तुमने सुना और उन्हीं के मंगलमय मुखचंद्र से निर्गत वेणु गीतामृत जो गोपाङ्गनाओं के निरावरण कर्ण कुहरों में सन्निविष्ट होकर उनके सुधबुध को सबको विभोर कर गया और उन्हीं का यह मंगलमय दिव्य चित्र है। ये तीन-तीन नहीं एक ही वस्तु है। इसलिये तुम्हारा मन गड़बड़ाया नहीं और कहने का अभिप्राय यह है कि जिस भगवती राधा रानी को प्रतीत होता है–'दुरापजन वर्तिनी रतिः' तो जन्मजन्मांतर, कल्प-कल्पांतर में जो पद दुष्प्राप्य प्रतीत होता है, उसी में हमारी प्रीति है। यदि किसी तरह से जन्म-जन्मान्तर कल्प-कल्पांतर के पुण्यपुंज के प्रभाव से भगवान् के मंगलमय मुखचन्द्र दर्शन का सौभाग्य हुआ भी, उनके पादारविन्द की चन्द्रिका के निहारने का सौभाग्य हुआ भी, तो लज्जा वैरिणी नेत्रोन्मीलन नहीं करने देती। नेत्र खोलने ही नहीं देती लज्जा। कुलांगना स्वभाव सुलभ लज्जा देखने ही नहीं देती क्या करूँ? जन्मजन्मांतर कल्पकल्पांतर के पुण्य पुंजों के प्रभाव से भगवान् के मङ्गलमय स्वरूप के दर्शन का सौभाग्य मिला तो लज्जावश तू नेत्रोन्मीलन करके उनके निहारने की प्रवृत्ति और किसी तरह लज्जा का अपनोदन करके निहारने लगती है, तो गुरुजनों की उक्तियां रूपी विषवर्षण उनसे मति अत्यन्त व्याकुल हो जाती है।

'गुरुक्ति–विष–वर्षणैर्मतिरतीव दौस्थ्यंगता'

इसका रहस्य यह है कि यद्यपि सब गोप गोपियां भगवान् के भक्त हैं। गोप कन्याओं की श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द में स्वाभाविक प्रीति है। भले ही चन्द्रमा का दर्शन न हो, तो भी कुमुदिनी, अपने आप ही प्रफुल्लित हो जाती है ऐसे ही श्री कृष्ण चन्द्र परमानंद का नन्द भवन में प्रादुर्भाव हुआ, उस अविर्भाव मात्र से गोपांगना रूपी कुमुदिनी प्रफुल्लित हो गयी स्वाभाविक रूप से। तो इस दृष्टि से श्री राधा रानी वृषभानुनन्दिनी नित्य निकुंजेश्वरी और सब गोपांगनाओं की सबकी स्वाभाविक प्रीति भगवान् श्याम सुन्दर मदन मोहन में है। उन बालिकाओं के माता पिताओं को भी बुद्धि हुई कि बालिकाओं को अच्छा घर वर मिल जाए, विवाह हो जाय तो बड़ा अच्छा। श्री कृष्ण से विवाह हो जाये, तो कितना अच्छा? श्री कृष्ण की अनन्य शक्ति को लोग अनुभव कर रहे थे। कालियानाग का मद मर्दन किया। शकटासुर का मद मर्दन किया, केशी का मान मर्दन किया अघासुर, बकासुर और तृणासुर, पूतना आदि बड़े-बड़े दैत्यों और दानवों का संहार करने वाला भी कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द

मदन मोहन है। उसका अनन्त तेज है अतुलित प्रताप महा महिम वैभव, अतुलित विज्ञान यह सब देखकर सभी मुग्ध थे। सब की इच्छा हुई कि इन बालिकाओं का विवाह इन्हीं के साथ कर दें। लेकिन मन में आयी कि कोई ज्योतिषी जी मिल जायें, उनसे पूछ लें कि यह विवाह बनता है कि नहीं बनता? इतने में महाराज गर्गाचार्य पधारे, गर्गाचार्य से लोगों ने प्रश्न कर दिया, तो गर्गाचार्य जी ने उनसे विनती करके कहा कि बाबाओं बचाओ। यह विवाह बनता नहीं। इन गोप कन्याओं का श्री कृष्ण से संस्पर्श हो जायगा, तो सौ वर्ष के लिये भीषण विप्रलम्भ जन्य ताप तुम सबको सहन करना पड़ेगा। सौ वर्ष श्री कृष्ण दर्शन नहीं होगा। अब यह लोगों की आशा कल्पलता पर एक प्रकार का तुषार पात हो गया। सबने विचार बदल दिया। अब इन बालिकाओं का श्री कृष्ण के साथ विवाह नहीं करेंगे, क्योंकि इस विवाह से श्री कृष्ण का वियोग हो जायगा, सौ वर्ष के लिये भीषण वियोग हो जायगा। अब सबको यह डर लगता था, कि यह कन्याएं कहीं कृष्ण का दर्शन न कर लें, कृष्ण का स्पर्श न कर लें।

'गुरुक्ति विष वर्षणैर्मतिरतीव दौस्थ्यं गताः॥

राधा रानी कहती हैं कि श्री कृष्ण चन्द्र मदन मोहन दुराप्य, दुष्प्राप्य हैं। जैसे रंक को चिंतामणि, ऐसा हमारे लिये श्री कृष्ण का दर्शन दुर्लभ। किसी तरह से जन्मजन्मान्तरों के कल्पकल्पान्तर, जुग जुगान्तरों के पुण्यपुंज से दर्शन का सौभाग्य मिलता है, तो लज्जा नेत्रोन्मीलन नहीं होने देती देखने के लिये। किसी तरह से लज्जा का अपनोदन करके श्री कृष्ण चन्द्र को निहारने लगती हैं। पादारविन्द की नखमणि चन्द्रिका को निहारने लगती हैं, तो गुरुजनों की जो मति है, वह व्याकुल हो जाती है। अर्थात् वे बाधा डालने लगते हैं कि श्रीकृष्ण से प्रेम करती है, श्री कृष्ण का दर्शन करना चाहती है, श्री कृष्ण के पास जाना चाहती है यह—इत्यादि इत्यादि उक्तियों से विष वर्षण करते हैं।

गोपाङ्गना कहती है 'सखि हम ब्रज रज क्यों न भयीं'। अगर हम ब्रजरज होतीं 'वह लगती उड़-उड़ सांवर शरीर'। ब्रज रज होती तो स्वच्छन्दता से श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द के मंगलमय चरणारविन्द का स्पर्श कर सकती तो गोपाङ्गना एक जगह कहती है—

'धन्यास्तु मूढ़ मतयोऽपि हरिण्य एता, या नन्दनन्दन मुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सह कृष्ण साराः, पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

वे कहती हैं, हम हरिणी होतीं हरिणी। सखी! यह हरिणी धन्य है जो अनुराग भरे नयनों से अपने मृगपतियों के साथ मदन मोहन के मंगलमय सुन्दर मुख चन्द्र के दर्शन करती हैं। पर वे बड़ी मूढ़ मति हैं। हरिणी जानती नहीं कि क्या श्री कृष्ण चन्द्र मदन मोहन परमानंद कन्द हैं और क्या हम हैं? उपासकों को उपासना के लिये उपास्य तत्व को जानना चाहिये। उपासक अपने आपको जाने कि मैं कौन हूं? उपासक उपास्य का सम्बन्ध क्या? उपासना का ढंग क्या है? यह भी जानना चाहिये। यह बिचारी हरिणी तो कुछ नहीं जानती फिर भी यह स्वच्छन्दता पूर्वक वन-वन में जहाँ-जहाँ श्यामसुन्दर मदन मोहन श्री कृष्ण चन्द्र जाते हैं, हरिणियां जाती हैं। भगवान् का दर्शन करती हैं। इनके पति इनको साथ लेकर भगवान्

का दर्शन कराने लगते हैं, इनका नाम धरा कृष्ण-सारा। इनके पतियों का नाम 'कृष्ण सार'—'कृष्ण सार' माने 'कृष्णः सारो येषाम् ते कृष्ण सारा' असार! संसार में कृष्ण ही सार है। वैसे कृष्ण सार माने काला मृग। लेकिन साहित्य के श्लेष से इसका अर्थ होता है—''कृष्णः सारो येषाम्' असार संसार समुद्र में कृष्ण ही सार हैं, इसीलिये वे श्री कृष्ण दर्शन पाते हैं। और अपनी पत्नियों (हरिणियों) को भी श्री कृष्ण का दर्शन कराते हैं 'अस्मद् पतिश्च.... ....अभिमानसारम्' 'हमारे पतियों ने तो अभिमान को सार मान रखा है। वह स्वयं श्री कृष्ण दर्शन नहीं करते हमको भी कृष्ण दर्शन में बाधा डालते हैं, तो वहाँ कृष्ण का दर्शन करती हैं। जहाँ-जहाँ श्री कृष्ण चन्द्र परमानंद कंद वेणु बजाते हैं। अपने मुख चन्द्र पर वेणु को धारण करके अपने अधरामृत से वेणु छिद्रों को परिपूर्ण करके अनन्तानन्त दिव्य आनंदामृत नादामृत गीतामृत से सारे मन को परिपूर्ण कर देते हैं—यह हरिणियाँ धन्य हैं धन्य हैं जो भगवान् श्री कृष्ण का दर्शन करती हैं, 'प्रणयावलौकैः।'

'पूजा' एक तो पूजा होती है द्रव्य मय पूजा।
द्रव्य यज्ञा स्तपो यज्ञा योग यज्ञास्तथापरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च यतयः संशित व्रताः॥

एक द्रव्य मय यज्ञ होता है एक ज्ञानमय यज्ञ होता है। जो ज्ञानमय यज्ञ उत्कृष्ट होता है इन्होंने ज्ञानमय यज्ञ किया। नेत्र ज्ञानेन्द्रिय है—हस्तादि कर्मेन्द्रिय हैं—तो इन्होंने अपने नयनों से हमारी श्री राधारानी का दर्शन किया। इन्हें देखकर श्री कृष्ण को भी वृषभानुनन्दनी नित्य निकुंजेश्वरी राधारानी के नेत्रों का स्मरण हो आया। इन हरिणियों ने 'प्रेम'—प्रेमामृत-प्रणय—अपने नयनों में प्रेमामृत भरकर-प्रणय। अपने नयन रूपी कमल दल में अपना प्रणय रूपी दिव्य अर्घ्य भगवान् को अर्पण करती हैं। नयन तो हैं कमलदल उसमें प्रणय, वह है द्रव्य। वह अर्पण करती हैं। ऐसी पूजा किसी ने नहीं की। यह हरिणियां भले ही मूढ़मति हैं, तो भी जितनी यह धन्य धन्य हैं इतनी हम नहीं, ऐसा गोपाङ्गनाएँ सोचती हैं। अपनी अनंत महिमा को भूल जाती हैं। अपनी अनंत अनन्त अन्तरंगता को भूल जाती हैं और हरिणी के भाग्य को सिराहाने लगती है। कभी कहती है कि

अति तड़ित् त्वमसौ क्व नु किं तपः, कियदहो कृतवत्यसि तद्वद।
यदिदमम्बुधरं हरिवक्षस-स्तुलितमालि गता रमसे सदा॥

'ऐ तड़ित! ऐ दामिनी!! तुम बड़ी धन्य-धन्य हो। तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। क्यों? तुमने वहाँ किस क्षेत्र में कौन तप किया है? किस काल में किस क्षेत्र में तप किया है? बताओ सखी! हम भी वही करें। कहती है—

'यदिदमम्बुधरं हरि वक्षस-तुलितमालि गता रमसे सदा'।

यह अम्बुधर जो हैं, काले-काले बादल यह तो हमारे श्यामसुन्दर मदन-मोहन श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की तरह है। जैसे हमारे श्यामसुन्दर में नील नीलधर में गमन समर्पण करती हो। सखी तड़ित! तुम पुण्यशालिनी हो जिसका नीलधर ही जीवन है।

''तड़ितः पुण्य शालिन्यः सदा या घनजीवनाः।

तेन सांर्द्ध व्यदृश्यन्त ना दृश्यन्त च तं बिना॥"

जब अम्बुधर होता है तब ही दामिनी—(तड़ित) का दर्शन होता है। अम्बुधर नहीं तो दामिनी (बिजली तड़ित) का दर्शन भी नहीं। प्रिय तो वही हो जो जिसके अस्तित्व में ही अपना अस्तित्व रखे। जिसका अस्तित्व न होने पर अपने अस्तित्व को मिटा दे। इसलिये कहते हैं कि—

'कैतव रहितं प्रेम नाहि तिष्ठन्ति मानुषे लोके'।

दुनिया में कैतव रहित प्रेम नहीं। छल छद्म रहित शुद्ध प्रेम लोक में नहीं होता 'यदिभवति तस्यविरहः।' यदि हो जाता है तो विरह हो जाता है। विरह कहा, विप्रलम्भ कहा। यदि विरह हो, जाए तो कौन जिये? जीते ही नहीं रह सकते। इस तरह हे सखी! तुम बड़ी धन्य धन्य हो जो हमारे श्यामसुन्दर के उरस्थल के तुल्य जो अम्बुधर है उसी पर क्रीड़ा करती हो। उसके साथ ही जीवित रहती हो। उसके न रहने पर तुम भी नहीं रहतीं। तुम धन्य हो धन्य हो। बताओ तुमने कौन ऐसा तप किया, वही बताओ तो हम भी वही तप करेंगे। इस प्रकार अपने अनंत सौभाग्य को भूल जाती हैं। श्री वृषभानुनंदिनी नित्य निकुंजेश्वरी राधा रानी हैं तो वही अनंतसिंधु का माधुर्यसार सर्वस्व लेकिन फिर भी लीला क्षेत्र में आकर कहती हैं 'दुराप जन वर्तिनी रति—गता।' त्रिशरी (हरिणी) पर्वतशरी (ब्रजरज) होती तो ठीक रहती, जिससे प्रियतम के दर्शन में सुविधा होती। तो 'जनिःपरमिदं कुलीनान्वये'—कुलीन खानदान में जन्म हो गया कहीं ऊँचे नीचे पैर पड़ गया तो कुल को कलंक लग जाय—'इतमत देखे चौथ को चंदा, तोय देखे को कलंक मोय लग जायगो'। तो इस दृष्टि से प्रीति की बड़ी अद्भुत दशा है। जैसे बाढ़ को रोकने के लिये बांध बांधा जाता है, परंतु नदी का वेग बांध को तोड़ कर आगे बढ़ जाता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के बंधन मर्यादाओं का जो बंधन है उसे तोड़ती हुई प्रेम नदी का प्रवाह चलता है। यह अद्भुत प्रीति।

एक बार वृन्दावन में इस पर पंद्रह दिन तक शास्त्रार्थ चला। कि राधा 'स्वकीया' या 'परकीया'। एक दिन स्वकीया पर शास्त्रार्थ चलता था दूसरे दिन परकीया पर जो पंद्रह सोलह दिन तक चला। तो वह और कुछ नहीं परकीया में सम्मिलन दुर्लभ जबकि स्वकीया में दौर्लभ्य नहीं। 'यत्र निषेध विशेषः' जहां निषेघ जहां जितनी दुर्लभता वहां उतना ही प्रेम की पराकाष्ठा अभिव्यक्त होती है। यद्यपि अंतरंग स्थिति यही है कि आनंदसिंधुसार सर्वस्व श्री कृष्णचंद्र श्यामसुन्दर मदनमोहन हैं और माधुर्यसार सर्वस्व की अधिष्ठात्री श्री राधा रानी हैं। उनमें भी परकीयात्व का प्रादुर्भाव केवल इसलिए कि उत्कट उत्कण्ठा प्रतिक्षण नवनवायमान होकर अभिवर्धमान हो। आनंदकंद श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनंदन मदनमोहन की प्राणेश्वरी, अभिवर्धमान ब्रजेश्वरी हृदयेश्वरी एवं माधुर्यसार सर्वस्व की अधिष्ठात्री है राधा रानी उसे कोई बहिरंग व्यक्ति क्या जाने। उनकी अन्तरंग लीलाओं को कोई क्या जानेगा। महल की बात तो माहिल ही जानते हैं कि महल के भीतर क्या हो रहा है बाहर भेड़ चराने वाला क्या जाने? यह सब बात है किन्तु श्री शुकदेव जी महाराज महल की बात जानते हैं। वह श्री राधा रानी के नित्य निकुंज में निवास करने वाले हैं। सब रहस्यों से पूर्ण हैं उन्हें पूर्ण विदित हैं, वह पूर्णअधिकारी

हैं। इसीलिए प्रारम्भ में 'श्री शुक उवाच' कहा। दो प्रकार के ज्ञानी होते हैं।

एक तो ज्ञानी होते हैं पर सिद्ध नहीं होते। एक सिद्ध होते हैं ज्ञानी नहीं। उनको यह भी मालूम नहीं कि आज भिक्षा भी मिलेगी कि नहीं मिलेगी। एक सिद्ध नहीं लेकिन ज्ञान है उन्हें। कुछ सिद्ध, ज्ञानी नहीं हैं छू मंतर पढ़ दें आकाशपाताल की बात बतायें लेकिन अनंत अखण्ड निर्दृश्य दृक्, निर्भास्य अखण्ड भान, नित्यचैत्य स्थिति का अपरोक्ष ज्ञान नहीं। लेकिन कुछ लोग होते हैं वशिष्ठ के तुल्य, व्यास के तुल्य, शुक के तुल्य जो ज्ञानी भी हैं सिद्ध भी हैं। श्रीमान् श्री शुकदेव भी परमदिव्य शक्ति सम्पन्न, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता ईश्वरता का लोकोत्तर चमत्कार हैं ऐसे श्री शुकदेव जी तो सिद्ध भी हैं और ज्ञानी भी हैं। ब्रह्मविद् वरिष्ठ हैं। तो यह दोनों को प्रगट करने के लिए कहा कि 'श्री शुक उवाच'।

अंदर की भीतर की परम मनोरम अंतरंग लीलाओं का रहस्य बाहर की लीलाओं से नहीं प्रकट होता। इसीलिये महर्षि बाल्मीकि के मुखारविन्द से एक श्योक निकल पड़ा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

क्रौंच-क्रौंची पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे एक व्याध ने आकर क्रौंच पर बाण चला दिया—क्रौंच मर गया। क्रौंची विलाप करने लगी करुण क्रन्दन करने लगी। उसका करुण क्रन्दन सुनकर महर्षि के हृदय, जो करुण रस से लबालब भरा हुआ था उसमें उद्गार था वह छलक पड़ा। प्याले में रस भरा हो तो छलकता है—हृदय करुण रस से भरपूर था वह रस छलक पड़ा। वही उच्छलित होकर उछल पड़ा, छलक पड़ा, और श्लोक बन गया 'शोकः श्लोकत्वमागतः' महर्षि के हृदय का जो शोक था वही श्लोक बन गया करुण रस ही श्लोक में रूप में प्रगट हुआ 'मा निषाद......काम मोहितम्'। आखिर ब्रह्मा जी ने उपदेश दिया महर्षि को कि इसी प्रकार के इसी ढंग के श्लोकों से आप राम चरित्र का वर्णन करो, परंतु पहले राम चरित्र का अनुभव करो निर्विकल्प समाधि के द्वारा, ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा राम के, लक्ष्मण के भरत के सबके इंगित, भासित, चेष्टित भावित चरित्रों का दर्शन करो तब वर्णन करो।

टेलीप्रिंटर के आधार पर रामायण नहीं लिखी गयी, संवाददाताओं के तारों के आधार पर रामायण का निर्माण नहीं हुआ, महर्षि ने ऋतम्भरा प्रज्ञा, समाधि जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा सब प्रकार का साक्षात्कार करके तब रामायण लिखा। इस प्रकार शुकदेव जी महाराज बिना बात के बोलने वाले नहीं थे, किंतु जो उन्होंने अनुभव किया है श्री राधारानी वृष भानुनन्दिनी के प्राणनाथ प्रियतम की मंगलमयी लीलाओं का वही लिखा है। इसीलिये कहा गया कि 'श्री शुक उवाच' तो श्री शुकदेव जी वोले। तो बहुत लम्बी बात एक-एक श्लोक पर पन्द्रह-पन्द्रह दिन लगते हैं तो सात दिन में क्या बोले। तब भी कुछ इधर-उधर की बात थोड़ी-थोड़ी कहेंगे—

तो पहला श्लोक है—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगामायामुपाश्रितः॥

भगवानपि। भगवान् भी भगवान् क्या है? तो श्री मद्भागवत के आरम्भ में ही कहा है कि–

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

उन्होंने कहा कि भाई !

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रिय प्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

'वदन्ति तत्त्वविद' यह सब कुछ कर्म बताया। सामान्यजन समझते हैं कि कर्म का फल है ऐश्वर्य प्राप्ति, वैभव की प्राप्ति, धन-धान्य की प्राप्ति और फिर उसका फल क्या–कामोपभोग। और कामोपभोग का फल कि 'इन्द्रिय तर्पण' और कहा कि फिर क्या? तो कहा कि फिर क्या? तो कहा कि फिर विषयों की प्राप्ति का प्रयास। किसी ने कहा कि भई यह बड़ा काम कर रहा है। बोले! 'भई इतना काम क्यों करते हो' तो बोला 'महाराज काम न करें तो खायें क्या? कहा कि 'खाते क्यों हो तो कहा कि 'खायेंगे नहीं तो काम कैसे करें' अरे काम न करें तो खायेंगे क्या और खायेंगे नहीं तो कैसे करेंगे?

कुर्वते कर्मभोगाय कर्म कर्तुम् च भुञ्जते'।

कर्म करते हैं भोग के लिए और भोग भोगते हैं कर्म के लिए–अरे भई! इस गोरख धन्धे का अन्त भी कभी होगा? तो इसलिए कुछ नहीं। धर्म का परमफल मोक्ष। धर्म का फल अर्थ नहीं।

ऐन्द्रपद मिल जाए, ब्रह्मपद मिल जाएं, ऐश्वर्य मिल जाय, नन्दनवन मिल जाए, कल्पवृक्ष मिल जाय, कामधेनु मिल जाय, चिन्तामणि मिल जाय, अमृतकुण्ड मिल जाय तो यह सब है कर्म का फल है। यह धर्म का फल है अपवर्ग की प्राप्ति अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक अशरणशरण अकारण करुण वरुणालय भगवान् की प्राप्ति।

'अरब खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज।
जो तुलसी निज मरण है तो आवे किस काज॥'

यदि अरब खरब का द्रव्य मिल जाय, उदय-अस्त तक राज्य भी हो जाय, तो कै दिन? जीवन कितना क्षणभंगुर? पानी के बुलबुले में तो विश्वास किया जा सकता है परन्तु जीवन में विश्वास करना कठिन है। वैसा क्षणभंगुर वैभव हो भी जाय तो क्या? साम्राज्य, स्वराज्य, वैराज्य, अनन्त धन धान्य मिल भी जाय तो क्या? 'धर्मस्य ह्यापवर्गस्य' धर्मानुष्ठान का परमफल है अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान् को प्राप्त करना। हाँ! धर्म का गौण फल है अर्थ, धन प्राप्ति का क्या फल–'भोग' नहीं-नहीं, नहीं'–धन का फल है–

'अर्थे धर्मस्य, धर्मेकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः'–

अर्थ का परमफल है धर्मानुष्ठान। धन मिल गया तो उसका पवित्र उपयोग करो, यज्ञ करो, तप करो, दान करो, परोपकार करो, समाज सेवा करो, राष्ट्र सेवा करो। धन का फल

काम नहीं, धन का फल है धर्मानुष्ठान। धर्म का मुख्य फल 'मोक्ष' और धर्म का गौण फल धन प्राप्ति। धन का मुख्य फल 'धर्मानुष्ठान' धन का गौण फल काम। कहा तो काम का फल 'इन्द्रिय-तर्पण नहीं,—'कामस्य नेन्द्रिय प्रीतिः' इन्द्रियों का तर्पण काम का फल नहीं। तो फिर काम का क्या फल? 'लाभो जीवेत यावता'—जीवन धारण करना ही काम का फल है। रोटी इसलिये खाते हैं कि शरीर ठीक रहेगा भगवान् का भजन करेंगे। पानी इसलिये पीते हैं कि स्वस्थ रहें, भगवान का चिन्तन कर सकें। भगवान् का अपरोक्ष साक्षात्कार कर सकें। एक आदमी बादाम खाता है, मक्खन खाता है। कहा उससे कि क्यों बादाम खाता है, मक्खन खाता है? तो बताया कि गुरुजी हमारे मुहल्ले में गुण्डे हमला करें तो अपनी मां, बहिन, बेटियों की इज्जत की रक्षा करने के लिए हम गुण्डों का मुकाबला करने के लिए बादाम-मक्खन खाते हैं—ऐसा बादाम खाना पुण्य। मक्खन खाना पुण्य। एक से पूछा कि बेटा तुम क्यों खाते हो, तो कहा कि पड़ौसियों का सिर तोड़ने के लिए। तो उद्देश्य पवित्र होता है तो कर्म पवित्र बन जाता है। इसलिए धर्म का परमफल धर्मानुष्ठान। धन का गौण फल काम सेवन। काम सेवन का मुख्यफल जीवन धारण करना, इन्द्रिय तर्पण गौण फल। जीवन का क्या फल? जीवन का फल है 'तत्त्व जिज्ञासा' कि तत्त्व क्या है।

अखण्ड ब्रह्माण्ड में सार क्या है? असार संसार में सार क्या है? इस तत्त्व को जानना और फिर प्राप्त कर लेना यही परमफल है। कहा कि तत्त्व क्या है? 'जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा'। जीवन का फल तत्वजिज्ञासा, तो तत्व का लक्षण? 'वदन्ति तत्तत्व तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'—तत्वविद लोग उसको तत्व कहते हैं क्या? 'अद्वयम् यज्ज्ञानम्। सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित जो ज्ञान है वही 'तत्त्व' है। यह अनन्त ब्रह्माण्ड, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, भूधर, सागर, गगन, पर्वत, अनन्तानन्त प्रपंच इसमें सार क्या? इसको बनाने वाला ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान्। मिट्टी के घड़े को बनाने वाला कौन?—ज्ञानवान, इच्छावान, क्रियावान कुम्भकार। लकड़ी की मेज को कौन बनाता है? ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् बढ़ई। उदजन् बम, परमाणुबम, हाइड्रोजन बम कौन बनाता है? ज्ञानवान् इच्छावान्, क्रियावान्—इन सबका बनाने वाला ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान्। मिट्टी का घड़ा बनाने वाला ज्ञानवान् इच्छावान्, क्रियावान् लकड़ी के मेज बनाने वाला, ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान्। नाना प्रकार के उत्पादक, पालक, संहारक यन्त्रों को बनाने वाला, ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान्—और चन्द्र मण्डल को बनाने वाला, सूर्य मण्डल को बनाने वाला, गगन पर्वत को बनाने वाला, भूधर-सागर को बनाने वाला—कोई ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान्—नहीं? अवश्य है। इसलिये कहते हैं कि जगत् का कारण है जो ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् है। इसलिये जीवात्मा-परमात्मा में यही भेद हैं कि जीवात्मा के ज्ञान सीमित, परमात्मा का 'ज्ञान' निसीम; जीवात्मा का 'आनन्द' सीमित परमात्मा का आनन्द निसीम; जीवात्मा की 'हुकूमत' सीमित परमात्मा की हुकूमत निःसीम तो 'सत्ता' 'ज्ञान' 'आनन्द', 'हुकूमत-स्तन्त्रता' यह पांच वस्तुएँ चाहियें, आप क्या चाहते हैं? हम जीते रहें। कितने दिन जीयें? कहा कि सौ वर्ष। और कोई जीने की आशा हो तो? कहा कि दो सौ वर्ष जीयें। फिर और कहा कि और जीते रहें। अन्त में हमारा जीवन निःसीम रहे। हमारा ज्ञान। ज्ञान की भूख हमें चाहिये। ज्ञान सीमित है चाहते हैं कि हमारा ज्ञान

निःसीम हो। चाह उसी की होती है जो असम्भव हो, जो सम्भव हैं उसकी चाह नहीं। इसीलिये सीमित सीमित जीवन वाला जीव चाहता है कि निःसीम जीवन मिले। नर-नारायण बनना चाहता है। जीव, शिव बनना चाहता है। सीमित जीवन वाला निःसीम जीवन वाला बनना चाहता है। सीमित ज्ञान वाला, निःसीम ज्ञान वाला बनना चाहता है। सीमित आनन्द वाला निःसीम आनन्द वाला बनना चाहता है। सीमित स्वतन्त्रता वाला जीव निःसीम स्वतन्त्रता चाहता है। स्वतन्त्रता। कितनी स्वतन्त्रता? जो बुढ़ापा के आधीन होगा वह स्वतन्त्र है? जो आधि व्याधि, शोक सन्ताप का शिकार होगा वह स्वतन्त्र है? स्वतन्त्रता है भूखों मरने की आजादी। भूखों मरने की आजादी है, भूखों मर लो कोई बाधा नहीं। बाकी। बाकी बुढ़ापा से छुटकारा मिल जाए, मौत से छुटकारा मिल जाय, आधि-व्याधि शोक-सन्ताप से छुटकारा मिल जाय—यह कहाँ? इसलिये हम चाहते हैं निःसीमता। सीमित ज्ञान वाला जीव निःसीम ज्ञान चाहता है। सीमित जीवन वाला निःसीम जीवन की इच्छा करता है। सीमित आनन्द वाला निःसीम आनन्द की कामना करता है। सीमित स्वतन्त्रता वाला निःसीम की कामना करता है। सीमित हुकूमत वाला चाहता है मेरी निःसीम हुकूमत बने।

यह पाँच चीजें ईश्वर के लक्षण हैं। निःसीम जीवन निःसीम ज्ञान, निःसीम आनन्द, निःसीम स्वतन्त्रता, निःसीम हुकूमत जिसमें है वह 'ईश्वर'। हममें तुममें जीवों में पांचों चीजें हैं। सीमित 'जीवन' है, सीमित 'ज्ञान' है, सीमित 'आनन्द' हैं, सीमित 'स्वतन्त्रता' है, सीमित 'शासन' है। तो इस दृष्टि से हमारा तुम्हारा सबका अन्तिम लक्ष्य वही होना चाहिये निःसीम अनंत ज्ञान-विज्ञान, परमात्मा स्वप्रकाश जो अनंत चन्द्र मण्डल, सूर्य मण्डल, भूधर, सागर, पर्वत का रचयिता है। लोग कहते हैं कि साहब। बीसवीं सदी है। बीसवीं सदी में विमान उन्नति के उच्चतम शिखर पर आरुढ़ हो रहा है। उद्‌जन बम, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम का जमाना है, हवाई जहाज का जमाना है! मैंने कहा भई। यह हवाई जहाज कहां से निकला? किसी साइंटिस्ट के मस्तिष्क से। आपको मालूम है मस्तिष्क किसके कारखाने में बनता होगा? दिमाग कहां बनता है? रूसी कारखाना में नहीं अमरीकी कारखाना में नहीं। बुद्धि कहां बनती है? मस्तिष्क कहाँ बनता है? दिमाग कहाँ बनता है?—वह तो अनंत कोटि ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा के कारखाने में बनता है। माता-पिता के शुक्र-शोषित से देह बन गया, मन बन गया, इन्द्रियां बन गयीं, बुद्धि बन गयी, दिमाग बन गया—कौन बनाता है? हम बनाते हैं? आप बनाते हैं? निराकार है कि साकार? हाड़-मांस साढ़े तीन हाथ का शरीर इसको किसने बनाया? हमने बनाया शरीर? हमने नहीं बनाया। कौन बनाता है? ज्ञानवान, इच्छावान, क्रियावान। जो ज्ञानवान, इच्छावान, क्रियावान परमात्मा उसने अनंतानन्त ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त प्राणियों को अनन्तानन्त शरीर बनाकर प्रदान किया। जो अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त मस्तिष्क बनाकर दे सकता है, अनन्तानन्त देह बनाकर दे सकता है, अनन्तानन्त दिल-दिमाग बनाकर दे सकता है—वह अपने लिये एक शरीर नहीं बना सकता? जिसने अनन्तानन्त प्राणियों के लिये अनन्तानन्त देह बनाकर दे दिया वह अपने लिये एक देह भी नहीं बना सकता? कहाँ का तर्क है? कहाँ की बुद्धिमानी है?

स्पष्ट है जो अनन्त ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त प्राणियों को अनेक कर्मों के अनुसार

अनन्तानन्त देह, अनन्तानन्त मस्तिष्क, अनन्तानन्त बुद्धि बनाकर प्रदान कर देता है वह भगवान् अपने लिये भी एक देह बना सकता है। पर वह देह हाड़, मांस, चाम का पुतला नहीं। वह देह भौतिक नहीं, कृष्ण चन्द्र परमानंद कन्द मदन मोहन, ब्रजेन्द्र नंदन का देह भौतिक नहीं, लौकिक नहीं।

'क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम शरीरा'॥

जीव का शरीर है। 'अधम शरीरा'—पंच रचित यह अधम शरीरा जीव का शरीर है। जीव का शरीर अधम शरीर पंच रचित है। ईश्वर का आनंदमय शरीर है। ईश्वर का शरीर आनंदमय है चिन्मय है।

'चिदानन्दमय देह तुम्हारी जाने ताहि कोई कोई अधिकारी'॥

जो चिदानन्दमय है वह माता पिता के शुक्र-शोणित से पैदा नहीं होता। वह अस्थि-मास-चर्म का पंजर नहीं है। वह मूत्र-पुरीष भाण्डागार नहीं है। वह साक्षात् अनन्त ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा सच्चिदानन्द घन परब्रह्म ही जीवों का कल्याण करने के लिये कभी राम:चन्द्र राघवेन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम परात्पर परब्रह्म के रूप में प्रगट हो जाता है, वही कभी कृष्ण चन्द्र मदन मोहन श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन के रूप में प्रगट हो जाता है, वही कभी राधारानी वृषभानुनन्दिनी, नित्य निकुंजेश्वरी के रूप में प्रकट हो जाता है, वही कभी जनक नन्दिनी जानकी के रूप में प्रकट हो जाता है। तो जो निराकार, निर्विकार अद्वैत अखण्ड, परब्रह्म—वही वस्तु 'तत्त्व' है। वही तत्त्व' है। उस 'तत्त्व' की जिज्ञासा, उसी 'तत्त्व' को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है। इसलिये 'वदन्ति तत्वत्त्वविदः' 'तत्तं यज्ज्ञानमद्वयम्'। अद्वैत जो ज्ञान है। स्व जातीय-विजातीय-स्वगत भेद-रहित स्वप्रकाश जो ज्ञान है उसी 'तत्त्व' को जानने के लिये प्रयास करना चाहिये। और वह तत्त्व' क्या है 'अद्वय-ज्ञान'। उसी को ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते'। उसी को कुछ लोग 'ब्रह्म' कहते हैं; उसी को 'परमात्मा' कहते हैं; उसी को 'भगवान्' कहते हैं। 'ब्रह्म' तत्त्व है 'परमात्मा' तत्त्व है, 'भगवान्' तत्त्व है। कई आचार्यों ने भेद माना है। जीव गोस्वामी बड़े विवेचक थे। गौडीय सम्प्रदाय के महान् आचार्य हुए हैं, वह बड़े त्यागी, बड़े तपस्वी थे। उन्होंने एक बात लिखी है 'माघकाव्य' का उदाहरण दिया—बोले! वैसे तो मालूम पड़ता है कि 'परमात्मा' और 'भगवान्' में नाममात्र का भेद है। तत्त्व तो अद्वैत-स्वगत-स्वजातीय भेद-शून्य ब्रह्म को कहते हैं—'नहीं' ऐसा नहीं। तो क्या है? वे कहते हैं कि भगवान् कृष्ण चन्द्र परमानंद कंद द्वारिका में अपनी सभा में विराजमान थे आकाश मण्डल में एक तेज दिखाई दिया। सब लोगों ने देखा कि आकाश मण्डल में एक तेज है, तेज है।

चयस्त्विषामित्यव धारितं पुरा, ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति, क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः॥

बड़े सब लोगें ने देखा एक अनन्त तेज आ रहा है 'तेज' और समीप आ गया, तो उसके कुछ अंग प्रत्यंग प्रस्फुटित होने लगे कहा, कि कोई देहधारी है: केवल कोई पुंज नहीं है, अपितु कोई देह धारी है, और समीप आ गये, तो कहा कि देह धारी ही कोई पुंमान्

है और बिल्कुल पास आया, तो कहा कि 'नारद इत्य बोधिसः' नारद है यह तो देवर्षि नारद है। तो जैसे एक ही तत्त्व में यह भेद हुआ। जो उनके लिये देह धारी प्रतीत होने लगा, जो और नजदीक हुए, उनके लिये पुंमान् प्रतीत हुआ, जो और भी नजदीक हुए उनके लिये भी नारद जी थे। ऐसे ही जो बहुत दूर है, उनके लिये ब्रह्म ब्रह्म तेज पुंज, तेज पुंज दिखाई देता है। जो कुछ समीप हुये, तो वह सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायकता विशिष्ठ सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् प्रभु ही प्रतीत हुए और जो बिल्कुल समीप आये, उनके लिये 'भगवान्' श्री कृष्ण चन्द्र परमानंद कंद मदन मोहन ब्रजेन्द्र नंदन राघवेन्द्र रामचन्द्र पूर्णतम पुरुषोत्तम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं—ऐसा जीवगोस्वामी जी कहते हैं। तो हम लोग बहुत महत्व तो नहीं देते हैं इसको, क्योंकि सिद्धांत की दृष्टि से तो हम लोग कहते हैं लक्षण के भेद से लक्ष्य में भेद होता है। लक्षण एक है तो नाम भेद में 'तत्त्व' में भेद कैसे होगा? लक्षण तो एक ही है। क्या तत्त्व है? 'वदन्ति तत्तत्त्वविदः'। क्या लक्षण है? 'यज्ज्ञानमद्वयम्'—अद्वैत जो ज्ञान है वह 'तत्त्व' है। अब तो नाम भेद है कोई 'परमात्मा' कह दे कोई 'भगवान्' कह दे। फिर भी मान लो—ठीक है, साथ-साथ तत्त्व यह है कि यह तो हम लोग भी मानते हैं आप भी मानते हैं। जनक महाराज परात्पर परब्रह्म तत्त्व का अनुभव करते हैं और रामचन्द्र राघवेन्द्र का दर्शन हुआ, उनके मुखारविन्द का दर्शन हुआ, पादारविन्द की नखमणि चन्द्रिका का दर्शन हुआ, दामिनी-द्युति-बिनिन्दक पीताम्बर का दर्शन हुआ, उनके मंगलमय श्री अंग की दिव्य आभा प्रभा कान्ति को निहारने लगे तो मन लोट पोट हो गया। कहते हैं—'इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा'। इनको विलोकन करने से ही तो मन बरबस ब्रह्मसुख का त्याग कर इनके रसास्वादन में संलग्न हो जाता है। यह क्यों? रास पंचाध्यायी है भाई। इसमें तत्त्व का विचार है। गोपांगना भी कहती है—आगे।

'न खलु गोपिकानन्दनो भवान् अखिल देहिनामन्तरात्मदृक्।
विरत विषम सार्चितो विश्वग्रस्ते सखौ देहिवान् सात्वितां कुलेः॥'

हे श्यामसुन्दर! आप गोपिकानंदन नहीं हो। नंदरानी के नंद लाल मात्र नहीं हो। तब क्या हो? अखिल देहियों के अन्तरात्मा दृष्टा हो। अखिल देहियों का जो अन्तरात्मा साथी, अखिल देहियों का जो अन्तरात्मा है उसके दृष्टा हो। तो केवल ब्रह्मा की प्रार्थना से 'सखौ देहिवान् सात्वितां कुलेः' सात्वितों के कुलों में आप श्री कृष्णचंद परमानंदकंद के रूप में प्रगट हुए हो। तो सार यह है कि जनक जी महाराज जो अन्तःकरण से ब्रह्म देख रहे थे। देखो! पोस्त का दाना होता है—पोस्त का दाना कितना छोटा होता है? पर आजकल सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र ऐसे हैं कि पोस्त का दाना हिमालय पहाड़ जितना दिखाई देता है यन्त्र की सहायता से। यंत्र की सहायता से सरसों, राई सुमेरु पहाड़ के तुल्य दिखाई देती है। वास्तव में ब्रह्म शब्द का अर्थ ही है 'वृद्धि-वृद्धौ-धातु' का 'ब्रह्म' है। ब्रह्म क्या? वृहत्त्वाद् ब्रह्म'—जो सबसे बड़ा उसका नाम 'ब्रह्म' कितना बड़ा? संकोचक प्रमाण होता तो कह देते कि इतने बड़े को ब्रह्म कहते हैं। 'सर्वे ब्राह्मण भोजनीयाः' संकोच करना पड़ता है। सर्वदेशकाल के ब्राह्मणों का एकत्रीकरण—भोजन कराना असम्भव। तब क्या? निमन्त्रिता सर्वे ब्राह्मण भोजनीयाः ऐसे कोई संकोचक प्रमाण होता तो कहते कि इतने बड़े बड़े को ब्रह्म कहते हैं। संकोचक प्रमाण

नहीं तब कितना बड़ा तो 'निरतिशयंयद्वृहत्' वाचस्पति की मति भी बड़प्पन की कल्पना करते-करते थक जाय, उसका नाम 'ब्रह्म' है। तब उससे बड़ा और कोई क्या होगा? ब्रह्म से बड़ा और कोई क्या होगा। तब कहा 'अनन्त' ब्रह्म'। सर्वदेश, काल, वस्तु परिच्छेद शून्यं। काल परिच्छेद शून्यं, वस्तु परिच्छेद शून्य, देश-काल-वस्तु परिच्छेद-शून्य, अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी जो न हो, प्राग्भाव-प्रध्वंसाभाव का प्रतियोगी जो न हो, अन्योन्याभव का प्रतियोगी न हो, अभाव चतुष्टय का जो अप्रतियोगी एवं भूत जो अनन्त बृहत्। कई कल्पनाओं के पहाड़ खड़े करते हैं।

एक राजा ने कहा कि हमें कोई ऐसी कहानी सुनाए कि उस कथा का अंत न हो तो उसे अपना आधा राज्य दे दूंगा। बड़े-बड़े कथक्कड़ गये कथा कहने, किसी ने एक दिन कही किसी ने दो किसी ने तीन एक सज्जन गये। बोले। एक महान् बन है, उस बन में एक महान् वृक्ष है, उस वृक्ष पर अनन्त-अनन्त शाखाएं हैं, एक-एक शाखा में अनन्त उपशाखाएँ हैं, एक-एक उपशाखा में अनन्त पल्लव हैं, एक-एक पल्लव में अनन्त पत्तें हैं और सब पक्षी बैठ गये। एक पक्षी उड़ा फुर्र, दूसरा पक्षी उड़ा फुर्र, तीसरा पक्षी उड़ा फुर्र। कहा कि क्या फुर्र फुर्र की लम्बी कहानी—बोले आगे बढ़ो भाई। कहा। आगे काहे बढ़े—अनन्त शाखा हैं, उपशाखाएँ हैं, अनन्त पल्लव हैं अनन्त पत्ते हैं, सब पर पक्षी बैठे हैं—उड़ने दो। सब उड़ें तो आगे कहें। राजा ने कहा ठीक है इसकी कथा का अंत नहीं और आधा राज्य दे दिया। तो ऐसी कल्पनाएँ हैं। वस्तुस्थिति यह है एक ही चीज है कि वाचस्पति की मति भी , वृहस्पति की मति भी वृहत्ता की कल्पना करते करते जहाँ थक जाए उसको—'निरतिशयं वृहत्' कहा है। 'जेहि प्रभु से अतिशय कोऊ नाहीं'—जिस प्रभु से अतिशय कोई है ही नहीं—'न तु समःस्यात् अधिकः कुतोऽन्यः'— उनके समान कोई है ही नहीं अधिक तो कोई हो ही कैसे सकता है?—'न तु समः स्यात् अधिकः कुतोन्यः' इस प्रकार से ब्रह्म वस्तु ही अनन्त है। तो फिर अनन्त हो गया तो फिर कहना ही क्या? इसलिये देश-काल-वस्तु परिच्छेद शून्य अनन्त अखण्ड निर्विकार विशुद्ध बोध ही 'ब्रह्म' है। उससे बढ़कर और कोई दूसरी चीज होती ही नहीं।

हमने कहा सूक्ष्म वीक्ष्ण यंत्र की महिमा से राई भी सुमेरु जैसी दिखाई देती है। तो जनक जी जो देख रहे थे अन्तः करण से देख रहे थे। अब जो ब्रह्म है वह सूक्ष्म वीक्ष्ण यन्त्र से जुड़ा हुआ है। 'जिनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।' उसमें जनक जी का अन्तःकरण ही है और वह सूक्ष्म वीक्ष्ण यंत्र जो राई को पहाड़ दिखाता है। राई को पहाड़ दिव्य लीला शक्ति। दिव्यलीला शक्ति भगवान् की दिव्य लीला शक्ति जुड़ी है लीला विशिष्ठ विशुद्ध अन्तः करण में जो 'ब्रह्म' का दर्शन उसका चमत्कार अद्भुत है जो वास्तविक ब्रह्म है उसमें कमी नहीं है। ये सब तो अंतः करण और लीला शक्ति विशिष्ठ अंतः करण—इसके प्रभेद हैं। कोई केवल आँख से राई को देखता है और कोई सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र की सहायता से राई को देखता है। राई को दोनों देखते हैं पर केवल आँख से जो राई दीखती है उसकी अपेक्षा सूक्ष्म वीक्षण यंत्र द्वारा राई पहाड़ के तुल्य दिखाई देती है। इसीलिये जनक जी जो ब्रह्म का अनुभव कर रहे थे वह केवल अंतःकरण से केवल आँख से अनुभव

कर रहे थे। लेकिन रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् में लीला-शक्ति भी जुड़ी हुई है, परात्पर परब्रह्म तो है ही, पर परात्पर परब्रह्म के साथ लीला शक्ति है। लीला शक्ति के कारण वह जो भगवान् का ऐसा मंगलमय स्वरूप कि 'जिनहिं विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा।' —तो इतना ही क्यों? भगवान् तो इससे भी आगे। लिखा है भागवत में—

'यन्मर्त्य लीलौपयिकं स्वयोगमाया बलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषण भूषणाङ्गम्'॥

भगवान् की ऐसी दिव्य मंगलमयी लीला शक्ति कि स्वयं भगवान् अपने मंगलमय मुख चन्द्र की आभा प्रभा कान्ति को निहार कर मोहित हो जाते हैं। 'रूप राशि प्रभु अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी।' मणिमय प्रांगण में अपने ही मंगलमय मुखचन्द्र को निहार कर मोहित हो गये। तुलसी दास जी ने लिखा है कृष्ण गीतावली में। जैसे श्री राम गीतावली है ऐसे ही श्री कृष्ण गीतावली है। श्रीकृष्ण गीतावली में एक बात लिखी है कि नंद रानी श्री कृष्ण चंद्र के मंगलमय मुख चंद्र को निहार कर मोहित हो रही हैं। कृष्ण पूछते हैं कि तू क्यों प्रसन्न हो रही है, तेरी प्रसन्नता का भेद क्या है? मां के आँखों में आँसू आ गये। कहने लगीं—'लाला क्या बताऊँ तुझे मैं अपने सुख का अनुभव नहीं करा सकती क्यों? तेरा मुख चंद्र निहारने का सौभाग्य मेरे नयनों का है। तू तो अपना मुख चन्द्र अपने नयनों से नहीं निहार सकता। तू तो प्रतिबिम्ब देखता है। तू तो मणिमय प्रांगण में अपने मुख चंद्र का प्रतिबिम्ब निहारता है, बिम्ब निहारने का सौभाग्य तो मेरे नयनों को है। —'मो सम नहि पुण्य पुंज बालक हैं तोरे।'' मेरे समान पुण्य पुंज तेरे नहीं हैं। मैं कैसे अनुभव कराऊँ तेरे मुख चंद्र निहारने में क्या आनंद है? तो—

'यन्मर्त्य लौलौपयिकं स्वयोगमाया बलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषण भूषणाङ्गम्।'

भगवान् की दिव्य लीलामयी शक्ति के द्वारा वही अनन्त अखण्ड निर्विकार परात्पर परब्रह्म जो भगवान् श्री कृष्ण के रूप में प्रगट होता है। राधारानी वृषभानुनदिंनी के रूप में प्रगट होता है। युगल श्याम। श्यामसुन्दर सम्मिलित तेज का सम्मिलित माधुर्य है वह सचमुच वर्णनातीत है। स्वयं भगवान् ही अपने रूप पर मोहित हो जाते हैं, तो फिर योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा मोहित हो जायें, जनक जी मोहित हो जायें तो कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। यह सब अल्पज्ञ हैं। योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा परमहंस भी अल्पज्ञ हैं। जो सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान् है वही अपने मुख चंद्र की आभा प्रभा, कान्ति निहार कर मोहित हो जाता है और नित नवनवायमान्, नित्य-नूतनता की अनुभूति करता है। नित्य ही नवनवायमान है। इस दृष्टि से भगवान् श्री कृष्ण की यह मंगलमय लीला है इसमें राधारानी और श्री कृष्ण चंद्र परमानंद कंद का दिव्य मिलाप का वर्णन है। इसी पर आगे कुछ कहेंगे।

—श्री राम जय राम जय जय राम—

(५–४–८१)
कानपुर

परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण

(भगवद्स्तुति एंव धर्म जयघोषों के अनन्तर स्वामी जी महाराज ने कहा–)

सज्जनो!

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमाया मुपाश्रितः॥

श्लोक का अर्थ है–भगवान् भी, अर्थात् भक्त लोग तो बहुत दिनों से भगवान् को प्राप्त करके उनके संग रासक्रीड़ा की इच्छा कर रहे थे परन्तु आज 'भगवानपि' भगवान् ने इच्छा किया। अनादि काल से जीवात्मा भगवान् के सम्मिलन की कामना करता है किंतु जीवन में यही सार है। नाना प्रकार का वैभव, अनंत ऐश्वर्य, संसार का सब कुछ क्षणभंगुर है। संसार में तत्त्व तो अनंत ब्रह्माण्ड नायक भगवान् सर्वान्तरात्मा सर्वशक्तिमान् प्रभु ही है। तत्त्व प्राप्ति की कामना–यही जीवन का फल है। 'जिज्ञासा–'जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा'। भगवत्सम्मिलन की उत्कट उत्कण्ठा, भगवत्-तत्त्व विज्ञान की उत्कट इच्छा–यह शास्त्रों में सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ बतलाया है।'

तमेतमात्मानम् ब्राह्मणाः यज्ञेन दानेन तपसा अनाशकेन विविदिषन्ति–तप के द्वारा, यज्ञ दान के द्वारा, व्रत के द्वारा ब्राह्मण लोग उस परात्पर परब्रह्म तत्त्व को जानने की इच्छा करते हैं और कई तरह की इच्छाएँ तो अपने आप हो जाती हैं। संसार की दुर्लभ से दुर्लभ, दुरूह से दुरूह वस्तुओं को पाने की कामना प्राणियों को होती है–'मनुष्याणां सहस्रेषु *कश्चिद्यतति सिद्धये*। यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मांवेत्ति तत्त्वतः। लाखों मनुष्यों में कोई एक भगवत्प्राप्ति की इच्छा करता है। फिर तदनुसार प्रयास करता है। इसीलिए इस इच्छा के लिये और जगह तो 'जानाति-इच्छति-अथ करोति'–'ज्ञान जन्याद्भवेदिच्छा'–ज्ञान से इच्छा अपने आप हो जाती है। फिर फल का ज्ञान हो, उसे पाने की इच्छा हो जाती है। ऐसे ही संगीत का ज्ञान हो उसे पाने की इच्छा होती है जिस वस्तु की जानकारी होती है और अच्छी वस्तु हो। इच्छा कहते हैं सौंदर्यजनित इच्छा, सौंदर्यजनित इच्छा। इसलिये–'जानाति-इच्छति-अथ करोति।" पहले जानता है, फिर इच्छा करता है, फिर कर्म करता है । तो वस्तु के सौंदर्य से वस्तु का ज्ञान होता है, तो वस्तु की प्राप्ति की इच्छा अपने आप हो जाती है। इच्छा के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। दार्शनिक लोग कहते हैं–'कृति' चाहे कृति का नम्बर तीसरा। पहला जानाति फिर इच्छति, तीसरा नम्बर है 'कृति' का तीसरी कोटि में आती है। इसलिए कृति-साध्य इच्छा, ज्ञान नहीं, कृति-साध्य ज्ञान नहीं। ज्ञान हमारे किए से नहीं होता ज्ञान तो प्रमाण से, प्रमाण से अपने आप ज्ञान हो जाता है। कभी हम न चाहें तो भी ज्ञान हो जाता है। दौर्गन्ध्य वस्तु, सौगन्ध्य वस्तु का ज्ञान नहीं चाहते तो भी हो जाता है। प्रमाण और? प्रमाण (प्रमेय) का ज्ञान होता ही है न चाहने पर भी होता है। यही क्रिया और ज्ञान

में भेद है। क्रिया कर्तुमकर्तुम् अन्यथाकर्तुमशक्य है। क्रिया को हम कर सकते हैं, नहीं कर सकते, अन्यथा कर सकते हैं। 'अश्वेन गच्छेत्' 'पदभ्याम् गच्छेत्', 'न वा गच्छेत् घोड़े से चले, साईकिल से चले, न चले सर्व विध स्वतन्त्र–'अश्वेन गच्छेत्'–'पद्भ्याम् गच्छेत्' 'न वा गच्छेत्' ।जो कर्तुम् अकर्तुम–अन्यथाकर्तुम् 'शक्य होती है उसी का नाम क्रिया है कर्म है। लौकिक ज्ञान-कर्तुमकर्तुम् अन्यथाकर्तुमशक्य नहीं। कई ज्ञान को हम नहीं चाहते तो भी हो जाते हैं। प्रमाण का प्रमेय का सम्बन्ध होगा तो हमारे न चाहने पर भी 'प्रमेय' का ज्ञान होगा ही और इच्छा ज्ञान से उत्पन्न हो जाती है। जहां सौंदर्य का ज्ञान होता है, सौन्दर्य ज्ञान-जनित इच्छा अपने आप हो जाती है। लेकिन यह सब सामान्य है। विशेष इच्छाओं के लिये तप करना पड़ता है क्योंकि विशेष इच्छा महत्व रखती है। गोस्वामी जी कहते हैं 'जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहिं न कछु सन्देहू'–जिसका जिस पर सत्य स्नेह वह उसको मिलता ही है, अवश्य मिलता है कोई शक्ति रोक नहीं सकती। तो ऐसी इच्छा–यह जन्म जन्मान्तरों, युगयुगान्तरों, कल्पकल्पान्तरों के पुण्यों का फल है। जैसे माता पार्वती की अपने भूत भावन विश्वनाथ सदाशिव शंकर को दूल्हा पाने की इच्छा। शिवजी दूल्हा बने। उनका वह दृढ़ स्नेह था दृढ़ स्नेह। सप्त ऋषियों ने बीच में आकर बाधा डाली। उन्होंने कहा हम तुम्हारी शादी श्रीमन्नारायण पूर्णतम पुरुषोत्तम विष्णु से कराय दें, उनका दामिनी, द्युति-विनिन्दक पीताम्बर देखकर तुम मोहित हो जाओगी। उनके दिव्य कुण्डल, वह दिव्य मुकुट वह मंगलमय अंग की आभा-प्रभा-कान्ति निहारकर तुम निहाल हो जाओगी। भूतभावन विश्वनाथ मिल भी जाये तो क्या? श्मशान में रहने वाले, सांपों की माला पहनने वाले, मुण्डों की माला धारण करने वाले–मिल भी जायेंगे तो क्या?–बाधा डाली। उनकी अडिग इच्छा। माता पर्वती ने कहा कि भले 'महादेव अवगुण भवन विष्णु सकल गुण धाम, पर जेहि कर मन रम जाहि सन ताहि तेहि सन काम' ।–क्या कहना चाहते हैं? भगवान् महादेव में बड़े दोष हैं–हम मान लेती हैं, भगवान् विष्णु अनन्त कल्याण गुण-गणों के धाम और भगवान् महादेव अनन्त अनन्त अवगुणों के धाम तो भी हमारी उत्कट उत्कण्ठा भगवान् भूतभावन शिव को पाने की है। आपको विवाह कराने की ही इच्छा है तो जाओ संसार में, बहुत से वर कन्या संसार में हैं ढूंढ लो। बेचारे सप्त ऋषियों को शान्त होकर लौट आना पड़ा। बिना ऐसी उत्कट भावना के उत्कट प्रीति बनती ही नहीं। गोपांगनाओं की भी ऐसी ही उत्कट भावना थी–

'असुन्दरः सुन्दरशेखरो वा, गुणैर्विहीनो गुणिनां वरो वा।
द्वेषी मयि स्यात्करुणाम्बुधिर्वा, कृष्णः सः एवाद्य गतिर्ममायम्'॥

गोपांगनाएँ कहती हैं 'हमारे श्यामसुन्दर हमारे मदन मोहन ब्रजेन्द्र नंदन भले ही असुन्दर हों, भले ही सुन्दर शेखर हों।' यह रति नहीं कि वह सुन्दरशेखर ही हों तभी हम प्यार करें 'असुन्दरः सुन्दर शेखरो वा'–भले ही 'असुन्दर' हों, भले ही 'सुन्दरशेखर' हों। 'गुणैर्विहीनो-गुणिनां वरो वा सारे गुण गणों से रहित हों अथवा अनन्त कल्याण गुणगणों के

धाम हों। हमसे द्वेष करते हों चाहे प्यार करते हों—'द्वेषीमयि स्यात्करुणाम्बुधिर्वा—इस तय्यारी से गोपांगनाएं कहती हैं कि—

'कृष्णः स एवाद्य गतिर्ममायम्'—वही श्रीकृष्ण परमानंदकंद मदनमोहन ब्रजेन्द्रनंदन, वही हमारे प्राणनाथ, वही हमारे प्रियतम हैं।

तो बिना ऐसी दृढ़निष्ठा के परमपद की प्राप्ति होती नहीं। तो ऐसी इच्छा जन्मजन्मांतरों की तपस्याओं से ही होती है। सामान्यतया 'जानाति-इच्छति' के नियम से ऐसी इच्छा हो भी जाए तो ऐसी स्थिरता नहीं होती। स्थिरता, इच्छा में स्थिरता है तो यह तप से, यज्ञ से, दान से—ऐसी इच्छा होती है। इसीलिये वेदों में कहा—'तमेतमात्मानं ब्राह्मणाः यज्ञेन दानेन तपसा अनाशकेन विविदिषन्ति'—ब्राह्मण लोग इस परमतत्त्व का यज्ञ से, तप से, दान से भगवद्चरणपंकज समर्पण बुद्धि से अधिष्ठित जप, तप, दान से ही परमपद् प्राप्ति की उत्कट इच्छा होती है। तो फिर भी जीव इच्छा कर रहा है बहुत दिनों से पर उसकी इच्छा तब होय जब भगवान् उसकी इच्छा करायें। प्रभु की इच्छा क्या? तो गोपांगनाजन भक्तगण—इन सबमें क्या है—भगवान् की शक्तियाँ। अनंत-अनंत भगवान् की शक्तियाँ। भगवान् सर्वशक्तिमान है। मिट्टी में घटोत्पादिनी शक्ति, दुग्ध में मक्खन उत्पादन करने की शक्ति, अग्नि में दहन करने की शक्ति, धरित्री में अंकुर उत्पादन करने की शक्ति। इस तरह से 'शक्त्यः सर्वभावानाम् अचिन्त्यज्ञानगोचराः'—जितने कार्य हैं उतनी शक्तियाँ। कार्य कितने हैं? अनंतानंत—अनंत कार्य हैं। इसलिए भगवान् में अनंत शक्तियाँ हैं। अनंत शक्ति सम्पन्न भगवान् जो कि अनंत ब्रह्माण्ड के रचियता। चंद्रमण्डल, सूर्यमण्डल, भूधर, सागर, गगन, पर्वत के रचयिता अनंतशक्ति सम्पन्न परात्पर परब्रह्म प्रभु। तो वे अनंत शक्तियाँ मिलकर भगवान् के साथ मिलकर, भगवान् के साथ क्रीड़ा करना चाहती हैं। भगवान् के साथ रमण करना चाहती हैं। जीवात्मा भी भगवान् की शक्ति है। यह क्या कहती है—"भूमिरापोऽनलोवायुः खं यं मनोबुद्धि रेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा'। यह आठ अपरा प्रकृति-पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंतत्त्व, महत्तत्व और अव्यक्तत्त्व यह आठ अपराप्रकृति 'अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्'—इन आठ प्रकृतियों से भिन्न एक पराप्रकृति है—पराप्रकृति।—'जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्'। जीव भगवान् की पराप्रकृति है और आठ भगवान् की अपराप्रकृति यह सभी प्रकृतियाँ भगवान् के साथ क्रीड़ा करना चाहती हैं, भगवान् के साथ रमण करना चाहती हैं। भगवान् के साथ एकमएक होना चाहती हैं। इसी प्रकार से मंत्र-ब्रह्मणात्मक वेद, वेदों की श्रुतियाँ ऋचाएँ वे भी सब मूर्तिमती होकर,—उसमें, वेदस्तुति में वर्णन है। जब भगवान् सृष्टि बनाने को उन्मुख हुए। अनंतानंत अपनी शक्तियों के साथ भगवान् महाप्रलयकाल में सो रहे थे। जैसे राजाधिराज महाराज शहंशाह चक्रवर्ती नरेंद्र अपने अंतःपुर में अपनी अनंत अनंत शक्तियों के साथ विहार करता है, ऐसे भगवान् अपनी अनंत अनंत शक्तियों के साथ महाप्रलय काल में स्वरूपनिष्ठ होकर रमण करते हैं। सृष्टि में जैसे राजा लोग जब जगते हैं तो उनको जगाने के लिये मंगल गायन होता है।

**'उषसि मागध मङ्गलगायनै र्झटिति जागृहि जागृहि जागृहि।
अतिकृपार्धकटाक्ष निरीक्षणैर्जगदिदं जगदम्ब सुखी कुरु॥'**

अन्नत ब्रह्माण्ड जननी राजराजेश्वरी पराम्बा श्री त्रिपुर सुन्दरी को जगाने के लिये बहुत से मागध बहुत से बंदी गण। ऐसे ही अनंत ब्रह्माण्ड नायक सर्वान्तरात्मा सर्व शक्तिमान भगवान् परात्पर परब्रह्म प्रभु जिस समय प्रबोधोन्मुख होते हैं जाग्रतोन्मुख होते हैं, तो भगवान् के ही श्वास-प्रश्वास से आविर्भूत होकर अनंतानंत श्रुतियाँ भगवान् का गुणगान करने लगती हैं। भगवान् की महिमा वर्णन करने लगती हैं। तो फिर वह राजाधिराज शहनशाह चक्रवर्ती नरेंद्र स्तुति करने वालों को बहुत सा पुरस्कार देकर उनको संतुष्ट करते हैं। तो मंत्र-ब्राह्मणात्मक वेदों की अधिष्ठात्री अनंत-अनंत शक्तियाँ जो प्रबोधोन्मुख समय भगवान् का गुणगान करने लगती हैं तो भगवान् उनको भी कुछ देते हैं? तो उन्होंने यही मांगा कि हम गोपांगना बनकर आपके संग रासलीला करें, आपके संग हम क्रीड़ा करें—यही कामना है हमारी। जैसे वृन्दाबनधाम की गोपांगनाओं ने आपके साथ क्रीड़ा किया उसी प्रकार से हम अनंत अनंत मंत्र-ब्राह्मणात्मक वेदों की अधिष्ठात्री महा शक्तियाँ मूर्तिमती होकर आपकी मंगलमयी लीला में सम्मिलित होकर क्रीड़ा करें।

तो इस प्रकार से और भी उपनिषदों में वर्णन है। रामचन्द्र राघवेंद्र भगवान् दण्डकारण्य पधारे तो ऋषि मुनी योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा परमहंस तत्त्वदर्शी गण रामचंद्र राघवेंद्र भगवान् का दर्शन किया। दर्शन करके उनके अनन्त सौंदर्य पर अनन्त माधुर्य पर मोहित हो गये और उन्होंने इच्छा प्रगट किया—

"भगवन् त्वामालिङ्गामो वयं"—हमारी इच्छा है हम आपका आलिङ्गन करें हम आपका स्पर्श करें। ऐसी इच्छा खराब नहीं हैं। ब्रह्म संस्पर्श की कामना। 'बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनियत्सुखम्'। बाह्य स्पर्शों में जिसकी आत्मा आसक्त नहीं हैं उसी को परात्पर परब्रह्म के संस्पर्श की उत्कट भावना हो सकती है। तो योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा परमहंस दण्डकारणय के निवासी गण उन्होंने भगवान्, राम चंद्र राघवेन्द्र के अनन्त माधुर्य अनन्त सौंदर्य का दर्शन किया और उनको मिलने की उत्कट कामना हुई। तो भगवान् ने उनको वरदान दिया यह तो हमारा मर्यादापुरुषोत्तम रूप है तो तुम भी श्री कृष्णावतार में गोप कन्या बनना तो तुम्हें हमारा संस्पर्श प्राप्त होगा। वह दण्डकारण्य के निवासी ऋषि-मुनि आकर गोपांगना भाव को प्राप्त हो गये। गोप कन्या बने। ऐसे जनकपुर की बहुत सी दिव्यांगनाएँ, देवलोक की बहुत सी देवांगनाएँ, गन्धर्वलोक की बहुत सी गन्धर्व कन्याएँ, विद्याधरलोक की बहुत सी विद्याधर कन्याएँ और भगवान् की अनन्त-अनन्त शक्तियाँ, भगवान् की दिव्य दिव्य जीव परा प्रकृतियाँ—यह सब अनादि काल से अनंत काल पर्यंत भगवद् सम्मिलन की उत्कट कामना लिये प्रयत्न शील हैं। यद्यपि राम भगवान् की लीलाओं में भी रामलीला है।

एक है भुशुण्डी रामायण। भुशुण्डी रामायण। भुशुण्डी रामायण में राम के रासों का वर्णन है। देवकन्याओं के साथ रामचंद्र राघवेंद्र का रास, गंधर्व कन्याओं के साथ, राज कन्याओं के साथ, और दिव्य ऋषि-महर्षियों के साथ, और अनंत-अनंत दिव्य-दिव्य शक्तियों के साथ

परात्पर परब्रह्म रामचंद्र राघवेंद्र भगवान् का रास है। कमल के पुष्पों पर रास, कुमुद के पुष्पों पर रास, चंद्रमा की चंद्रिकाओं पर भगवान् रामचंद्र राघवेंद्र का रास, भानु की प्रभाओं पर रामचंद्र राघवेन्द्र भगवान् का रास—यह सब भुशुण्डि रामायण में विस्तार से वर्णित है। कहते हैं कि उसके एक सौ आठ रास में से आधा रास बाकी था, वह जो वृन्दावन धाम में हुआ है। ऐसा भुशुण्डि रामायण वाले कहते हैं।

तो कहने का अभिप्रायः यह है कि बहुत व्यापक सिद्धांत है। कहा जाता है कि बिना गोपांगना भाव प्राप्त किये किसी जीव को भगवान् की प्राप्ति होती ही नहीं बिना गोपांगना भाव प्राप्त किये परमपद प्राप्ति होती ही नहीं। गोपांगना भाव क्या है? गोपांगना भाव है प्रभु की काया की छाया बन जाना। काया की छाया। काया की स्थिति, गति प्रवृत्ति के पराधीन छाया की स्थिति, गति प्रवृत्ति, रहती है। जो काया की स्थिति, गति, प्रवृत्ति वही छाया की स्थिति, गति प्रवृत्ति रहती है। भगवान् की इच्छाओं में अपनी इच्छाओं को मिला देना, भगवान् के मन में अपने मन को मिला देना, भगवान् के हृदय मे अपने हृदय को मिला देना। अर्थात् जैसे जल की स्थिति, गति, प्रवृत्ति के आधीन तरंग की स्थिति, गति प्रवृत्ति, बिम्ब की स्थिति, गति, प्रवृत्ति के आधीन प्रतिबिम्ब की स्थिति, गति, प्रवृत्ति, ऐसे ही परात्पर परब्रह्म परमेश्वर की स्थिति, गति, प्रवृत्ति के पराधीन ही जीव की स्थिति, गति प्रवृत्ति बन जाय, तब गोपांगना भाव प्राप्त होता है।

गोपांगनाओं की स्थिति, बड़ी अद्भुत। कहते हैं तीन प्रकार की मणि होती हैं—एक सत्रांत्रित की मणि, बड़ी दुर्लभ मणि। सत्रांत्रित की मणि-दुर्लभ मणि चिन्तामणि अति दुर्लभ। चिन्तामणि अति दुर्लभ और कौस्तुभमणि, कौस्तुभमणि अनन्यलभ्य वह दुर्लभ नहीं, अति दुर्लभ नहीं अनन्यलभ्य। केवल विष्णु ही के पास रहती है और किसी के पास रहती ही नहीं दो चार नहीं कौस्तुभमणि होती—एक ही है। अनन्यलभ्य है। जैसे कुब्जा का प्रेम तो सत्रांत्रित की मणि—दुर्लभ कुब्जा का जो प्रेम हुआ वह दुर्लभ प्रेम-'दुर्लभ'। लेकिन द्वारका की पट्टरानियों का जो प्रेम है वह 'अति-दुर्लभ'। रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, सत्या—यह जो भगवान् की परमान्तरंग हैं, महाशक्तियाँ—उनकी प्रीति चिन्तामणि के समान 'अति-दुर्लभ' हैं—अति दुर्लभ। गोपाङ्गनाओं की प्रीति कौस्तुभमणि के तुल्य 'अनन्यलभ्य'। और किसी के पास होती ही नहीं। इसलिए कहा कि गोपाङ्गना भाव प्राप्त किए बिना भगवत्पदप्राप्ति होती ही नहीं। तो उनकी स्थिति यह है। उद्धव जी ने पूछा—गोपाङ्गनाओं से कि आप कुछ सन्देश कहो, हम जा रहे हैं। आपके श्यामसुन्दर मदनमोहन ब्रजेन्द्रनन्दन को आपका सन्देश सुना देंगे। तो उन्होंने एक श्लोक कहा—

''स्यान्नः सौख्यं जगति परमं गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे।
अप्राप्येऽस्मिन् जगति नगरादार्त्तिरुग्राभवेन्नः॥
यद्यल्पापि क्षतिरुदयते तस्य मागात् कदापि।
सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत् तत्रवासं करोतु॥

भागवत् में लिखा हैं—''गोपीनां परमानन्द आसीत्—गोविन्द दर्शने'—गोविन्द दर्शन से

गोपाङ्गनाओं को अत्यन्त आनन्द मिलता है और 'क्षणंयुगशतमिव यासांयेन विनाऽभवत्'—श्रीकृष्ण के बिना एक क्षण भी उनको सौ युग के तुल्य बीतता है। एक क्षण सौ युग के तुल्य श्रीकृष्ण बिना। कितनी अद्भुत प्रीति। वहाँ कहती हैं गोपाङ्गना कि यद्यपि श्यामसुन्दर, मदनमोहन, यहाँ गोकुल आए तो हम लोगों को बड़ा सुख और न आए यहाँ तो यद्यपि हमारे दुःख का पारावार नहीं। फिर भी सन्देश हमारा यही है किँ—यहाँ आने से उनका कुछ भी नुकसान होता हो—'यद्यल्पापि क्षतिरुदयतेँ'—थोड़ी सी भी क्षति होती तो—'मागात्कदापिँ'—श्यामसुन्दर यहाँ कभी मत आयें। और 'सौख्यं तस्य स्फुरति हृदिचेत् तत्र वासं करोतु'—वहाँ रहने में उनको कुछ भी सुख होता है तो मेरे प्राणनाथ वहीं विराजमान रहें। वहीं रहें। जिनको श्रीकृष्ण दर्शन में आनन्द का पारावार नहीं, श्रीकृष्ण का विप्रलम्भ जिनके दुःख की अगाध दुःख की अगाध दुःख समुद्र की स्थिति है, तो भी अपने दुःख की कोई चिन्ता नहीं। 'तत्सुखसुखित्व' की भावना। प्रियतम को सुख हो। यदि यहाँ आने में प्रियतम की कुछ क्षति हो तो आप वहीं रहें। यदि वहाँ रहने के उनके मन में कुछ आनन्दस्फुरित हो तो मेरे प्राणनाथ, मेरे प्रियतम सदा सर्वदा वहीं निवास करें। यह 'अनन्यलभ्य प्रीति'। इसीलिए हमने कहा कि गोपाङ्गनाभाव की प्राप्ति किए बिना भगवत्पद प्राप्ति होती ही नहीं अनन्यलभ्य है वह।

तो यह सारी स्थिति ब्रज की है। रास माने—'रसानाम् समूहो रासः'। रस के समुदाय का नाम रास है। एक रास नहीं। एक रास नहीं रसों का समुदाय यही रास है। लास्य का भी नाम रास है। 'नृत्य'। जहाँ नायक अनेक नायिकाओं के संग में प्रेमानन्द में विभोर होकर नृत्य करता है—रास है। लेकिन—'रसानां समूहो रासः'। जैसा तैसा नृत्य का नाम रास नहीं है। इसीलिए पहले तो जानो कि वृन्दावन धाम क्या है? वृन्दावन धाम क्या? श्यामसुन्दर मदनमोहन ब्रजेन्द्रनन्दन क्या हैं? यह सब क्या हैं? रस ही रस हैं सब। इन्हीं सब रसों के समुदाय मिलकर 'रास' होता है। वृन्दावन धाम क्या है? भक्तों ने कहा—'पूर्णानुरागरस सार सरोवर'। पानी के सरोवर में मिट्टी का पंक होता है। उस मिट्टी के पंक से पंकज पैदा होता है। पानी के सरोवर से मिट्टी के पंक से उत्पन्न पंकज की सुन्दरता, मधुरता, सरसता का वर्णन करते-करते कविगण अघाते नहीं। कहीं दूध के सरोवर में मक्खन के पंक से कोई पंकज उत्पन्न अगर हो जाए तो पंकज की सुन्दरता, मधुरता, सरसता का क्या कहना?

पंकज में बीच में होती है कर्णिका और कर्णिका के चारों ओर पीली-पीली केसरें। तो पूर्णानुराग रससार सरोवर वृन्दावन धाम, उसमें पीली केसरें वह हैं गौरांगी-गोपांङ्गना-गौरांगी गोपाङ्गना। और उन केशरों में पराग है पराग, सूक्ष्मरज वह श्यामसुन्दर मदनमोहन ब्रजेन्द्रनन्दन और पराग में जो 'मकरन्द' है मकरन्द, वह राधारानी वृषभानुनन्दिनी नित्यनिकुंजेश्वरी। इसलिए भक्त लोग कहते हैं हमको वृन्दावनधाम का कृष्ण चाहिये। कहते हैं ब्रज में कई तरह के कृष्ण होते हैं एक द्वारकानाथ कृष्ण हैं, एक मथुरा नाथ कृष्ण और ब्रजेन्द्र। ब्रजेन्द्र तीन कृष्ण हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णनंद्र परमानन्द, वृन्दावनचंद्र कृष्णचंद्र परमानन्दकन्द और नित्य निकुञ्जमन्दिराधीश्वर श्रीकृष्णचंन्द्र। 'ब्रजे बने निकुञ्जे च सौक्ष्यमत्तोत्तरोत्तरम्'; नागाजी थे एक कदम्बखण्डी के नागाजी। कामबन की कदम्बखण्डी। कामबन की कदम्बखण्डी में

एक नागा बाबा रहते थे, उनकी जटायें झाड़ में उलझ गयी। जङ्गल में घूमते-घूमते झाड़ी में जटायें उलझ गयीं। थोड़ा बहुत सुलझाने की कोशिश किया नहीं सुलझीं। बोले! जिसने उलझायीं हैं वही सुलझायेगा। अहा! जिसने उलझाया है वही सुलझायेगा। तो जाना बन्द कर दिया। कई ग्वालिये आए—"बाबा तेरी जटा सुलझा दूं?—'ना लाला तू जा जिसने उलझाया वही सुलझायेगा।' अन्त में श्यामसुन्दर आये। कहा—'बाबा तेरी जटा सुलझा दूं? बोले—'ना लाला तू जा, जिसने उलझाया वही सुलझायेगा। कहा—'मैं वही तो हूं।' कहा—'मुझे क्या विश्वास—तू वही है। यहाँ तो कई कृष्ण होते हैं। ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्र, वृन्दावनचन्द्र—'तू कौन है? बोले—'तुम्हें कौन कृष्ण चाहिए?' मेरी स्वामिनी जिन्हें अंगीकार करे वह। मेरी स्वामिनी! तो स्वामिनी जी को भी प्रगट होना पड़ा। राधारानी वृषभानुनन्दिनी नित्यनिकुञ्जेश्वरी-स्वामिनी भी प्रगट हुई। उन्होंने कहा—"हां-हां, यह तुम्हारे कृष्ण हैं यह तुमको छू सकते हैं। हँ-हँ-हँ........तो ऐसे अलबेले रसिकभक्त होते हैं। तो—इसलिए उनकी यह दृष्टि है कि नित्य निकुञ्ज-मन्दिराधीश्वर परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं। उस कृष्ण की अनुरक्ति। उन कृष्ण की प्रीति।

तो श्री मद् वृन्दावन धाम और कृष्ण चन्द्र क्या हैं? (तत्त्व की बात बाद में) आनन्द वृन्दाबन चम्पूकार कहते हैं—'कृष्ण क्या हैं'? वह कहते हैं।

"अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वहनुपहत मूर्मिकण भरैः।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्द सरसो
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्"॥

कृष्ण एक कुवलय है। कमल है। बोले वह कैसा कमल है? बोले। 'अनुत्पन्नं नीरेषु'—यह पानी में नहीं पैदा हुआ। और कमल पानी में पैदा होते हैं यह कमल पानी में नहीं पैदा हुआ। बोले। 'कहाँ पैदा हुआ'? बोले—'सच्चिदानन्द रस सार'—सच्चिदानन्द रस सार सरोवर में। वेदों में जो 'सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म' का वर्णन है। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। तो उस अनन्तं-सत्यं-ज्ञानं-ब्रह्म। अनन्त जो सत्य ज्ञान ब्रह्म है उसी का सरोवर बना। सच्चिदानन्दरससार का सरोवर बना उस सच्चिदानन्दरससार सरोवर में जो पंकज बना, कमल बना, कुवलय बना वहीं कुवलय नन्दरानी ब्रजेन्द्रगेहिनी यशोदा के मंगलमय अंक में विराजमान जगमगा रहा है। बोले कैसा यह कुवलय है? बोले—'अनाघ्रातं भृङ्गै'—अभी तक भृङ्गों ने, भवरों ने इसके सौगन्ध का आघ्राण किया नहीं। माने-भक्तों का जो मनोमिलिन्द है। भक्तों के मन रूपी मधुप। मन ही भ्रमर है—मधुप-मधुपान करने वाले। तो योगीन्द्र, मुनीन्द्र अमलात्मा, परमहंसों, भक्तों के जो मनरूपी मिलिन्द उन्होंने अभी तक इसके नित्य माधुर्य का पान किया नहीं बोले—झूठ बोलते हैं क्योंकि भक्तों का मनोमिलिन्द तो अनादि काल से भगवान् के सौन्दर्यामृत, माधुर्यामृत, सौरस्यामृत, सौगन्ध्यामृत का रसास्वादन कर ही रहा है। 'अनाघ्रातं भृङ्गै'—कैसे कहते हैं? बोले हम ठीक कहते हैं। यह सच्चिदानन्द रससार सरोवर—समुद्भुत जो सरोज है श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द, दिव्य अनादि काल से भक्त

लोग उस का रसास्वादन कर रहे हैं, उसके सौगन्ध्यामृत का रसास्वादन कर रहे हैं वह। उनको आज स्वरूप देखकर लगता है यह तो नया है। यह नया है। असल में बात यह है कि भगवान् का रूप नित्य नवनवायमान है, नित्य नया है।

एक दिन अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्य की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी भगवती ने अपने भक्तों से कहा—एक मिनट में हम आती हैं। तो कहा, 'कहाँ आप जा रही हैं? कहा जरा श्री कृष्ण के पादारविन्द का सौगन्ध्यामृत रसास्वादन करके एक क्षण में आती हैं। गईं। भगवान् कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द के मंगलमय पादारविन्द के सौगन्ध्यामृत का रसास्वादन किया। प्रथम क्षण में जो रसास्वादन किया, द्वितीय क्षण में उससे कोटि-कोटि गुणित अधिक माधुर्य का अनुभव हुआ और तृतीय में अति कोटि-कोटि गुणित अधिक माधुर्य का अनुभव हुआ और चतुर्थ उससे भी अनन्त अनन्त कोटि गुणित अधिक अद्भुत माधुर्य का अनुभव हुआ तो फिर वहीं की होकर रह गयीं। अब बेचारी लक्ष्मी सोचती थी कि दो मिनट में लौट आयेगी पर उस माधुर्यामृत का, सौगन्ध्यामृत का रसास्वादन करने लगी तो उसको पता लगा कि यह तो अगाध है। इसका थाह ही नहीं। दुनिया के सब रसों की थाह है पर 'यहि रस विरस होत नहिं कबहूं।' दुनिया के सब रस अन्त में विरस हो जाते हैं पर यह कभी विरस नहीं होता। इसमें तो उत्तरोत्तर कोटि-कोटि गुणित अनन्तानन्त कोटि गुणित अद्भुत मधुरता का अनुभव होता है। इसीलिये भागवत कहती है—

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्यांघ्रियुगन्नवन्नवम्।
पदे पदे का विरमेत तत्पदात् चलाति यच्छीर्न जहाति यत्पदम्॥

यद्यपि भगवान् भक्तों को मिलते हैं और एकान्त में भी मिलते हैं। भक्त भगवान् के मंगलमय पादारविन्द के सौगन्ध्यामृत, माधुर्यामृत, सौरस्यामृत, सौन्दर्यामृत का रसास्वादन करते हैं, तथापि उनकी अद्भुतता को कहते हैं वह 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति।'—क्षण-क्षण में वह नित्य नवनवायमान होकर प्रतीत होते हैं। नित्य नूतनता ही उसमें भासित होती है। 'तथापि तस्यांघ्रियुगन्नवन्नवम्।' कहा कि 'पदे-पदे का विरमेत तत्पदात्' 'चलापि यच्छीर्न जहाति यत्पदम्'—लक्ष्मी चला हैं, चपला हैं, चंचला हैं और कहीं रहती नहीं लेकिन भगवान् के मंगलमय पादारविन्द में पहुंच कर अचला हो गयीं। चपला अचला हो गयीं क्योंकि सोचा पूरा रस का अनुभव कर तो जाये। पूर्ण रस का अनुभव हुआ ही नहीं वह तो तन्मयता के साथ रसास्वादन करने लगीं तो प्रति क्षण उत्तरोत्तर अनन्तानन्त गुणित अद्भुत मधुरिमा का अनुभव होने लगा। एक बात है, मधुर भी है, दार्शनिक भी। कहते हैं श्यामसुन्दर, मदनमोहन, कृष्ण चन्द्र अपनी प्राणेश्वरी, राजराजेश्वरी, रासेश्वरी, नित्य निकुंजेश्वरी राधारानी वृषभानुनन्दिनी के मंगलमय मुख चन्द्र के माधुर्य का रसास्वादन कर रहे हैं। कब से ? अनादि काल से और राधारानी वृषभानुनन्दिनी अपने प्राणनाथ, प्रियतम, श्यामसुन्दर, व्रजेन्द्र नन्दन के मंगलमय मुख चन्द्र का माधुर्यामृत, सौन्दर्यामृत, सौरस्यामृत का आस्वादन कर रही हैं और अभी तक एक-दूसरे को पहचानते ही नहीं। क्यों ? पहचानना किसको कहते हैं ? संस्कृत भाषा में। संस्कृत भाषा में पहचान को कहते हैं—'प्रत्यभिज्ञा'—प्रत्यभिज्ञा ! प्रत्यभिज्ञा

का अर्थ क्या होता है ? 'पूर्वानुभव जनित संस्कार शब्दापेक्ष' प्रत्यभिज्ञा आपने किसी देवदत्त को देखा है पटना में। फिर आप देख रहे हैं काशी में और कहते हैं कि यह वही देवदत्त है, जिसको हमने पटना में देखा था। इसको कहते है—'प्रत्यभिज्ञा'।—पूर्वानुभव संस्कार-सापेक्ष जो चक्षु जन्य-ज्ञान उसको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

यहाँ पूर्वानुभव भूत का अनुभव हुआ ही नहीं। राधारानी जो श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द का अनुभव कर रही हैं—एक दम नया-नया। पूर्वानुभूत का अनुभव नहीं किया। श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द भी अपनी राज-राजेश्वरी, रासेश्वरी, नित्य-निकुञ्जेश्वरी के मङ्गलमय मुखचन्द्र का माधुर्यामृत, सौगन्ध्यामृत रसास्वादन करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है बिल्कुल नया। पूर्वानुभूत का अनुभव होय, तो 'प्रत्यभिज्ञा'—कहा जाये। पूर्वानुभूत का अनुभव होता ही नहीं—नया-नया प्रतिक्षण नया-नया इसलिए अनादिकाल से दोनों रसिक अद्भुत मुखचन्द्र के आभा, प्रभा, कान्ति, सौन्दर्य, सौरस्य का रसास्वादन करते हैं पर पहचानते नहीं। मानो पूर्वानुभूत का अनुभव नहीं। प्रतिक्षण नव नवायमान, नित्य नये-नये का अनुभव होता है। यह सब वस्तुथिति है। इसलिए—

'यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्यांघ्रि युगन्नवन्नवम्
पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलाऽपि यच्छीर्न जहाति यत्पदम्'

इस दृष्टि से श्यामसुन्दर मदनमोहन क्या हैं ? तो सच्चिदानन्द रस-सार सरोवर समुद्भूत सरोज—और ऐसा सरोज जिसके सौगन्ध्य को मिलिन्दों ने भक्तों के मनोमिलिन्दों ने अब तक आघ्राण नहीं किया। उसका रसास्वादन भक्त मनोमिलिन्दों ने भी नहीं किया। इसलिए कहा है—'अनाघ्रातंभृङ्गैरनपहतसौगन्ध्यमनिलैः'। कवीन्द्रगण, वशिष्ठ, व्यास, बाल्मीकि प्रभृति कवीन्द्रगण भगवान् के यश सौरभ को दिगृदिगन्त में विकीर्ण करते हैं। भगवान् के यशरूपी सौरभ को दिगृदिगन्त में विकीर्ण-फैलाते हैं, तो उनको भी लगता है—यह यश सौरभ तो नया ही है। तो ! नया है बिल्कुल, इन कवींद्रों को भी भगवान् का सौगन्ध्य रूपी अनिल एक दम नया मालूम पड़ता है। 'अनपहत सौगन्ध्यमनिलैः'। इसलिए कि 'अनुत्पन्नम् नीरेषु' पानी में पैदा नहीं हुआ। किसी ने उसका आज तक दर्शन ही नहीं किया और यह सच्चिदानन्द रस-सार सरोवर से आविर्भूत है और उर्मिगण—जो संसार की उर्मियां हैं उनको इसका कभी स्पर्श ही नहीं हुआ। ऐसा परात्पर परब्रह्म कृष्ण है।

भागवत के शब्द हैं—'सत्य-ज्ञानानन्तानन्द मात्रैक रस मूर्त्तयः'—भाई ! मनुष्य का अपना यह शरीर है क्या ? हाड़, मांस, चाम का पुतला। माता-पिता के शुक्र-शोणित से उत्पन्न, हाड़, मांस, चाम का पुतला। लेकिन भगवान् का शरीर, भगवान का स्वरूप, भौतिक वस्तु से अतीत है। वह तो जो वेदांत-वेद्य, अनन्त ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा सच्चिदानन्दघन है वही आकर श्रीकृष्णचंद्र परमानन्दकंद, मदनमोहन के रूप में प्रगट हुआ। क्यों आया ? तो इसकी भी एक कहानी है। वेद में एक वचन है—

'पराञ्चिखानि व्यतृणत्सवयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्'

स्वयंभू परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया। इसलिए मनुष्य इनसे ब्राह्य वस्तुओं

को देखता है। 'आँख' से बाह्य रूप को देखते हैं, 'कान' से बाह्य शब्द को सुनते हैं, 'त्वक' से बाह्य स्पर्श को ग्रहण करते हैं, 'घ्राण' से बाह्य गन्ध को ग्रहण करते हैं। 'अन्तरात्मा' को इन इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता तो यहाँ धातु है—तृहूहिसि हिंसायाम्'—अगर मात्र केवल विरचना अभीष्ट था, तो कर देते—'विरचयत्'-विरचयत् न कहकर 'व्यतृणत्' कहा। इसका अर्थ है परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाकर उनकी हिंसा की, हिंसा की। 'हिंसार्थक-घातु'। क्यों हिंसा की ? बोले—इसलिए हिंसा की कि उनको प्रियतम के अनुभव से वंचित कर दिया। 'बुद्धि' तो परात्पर परब्रह्म का अनुभव करती है, मन भी परात्परा परब्रह्म का अनुभव करता है—'मनसैवेह द्रष्टव्यंनेह नानास्तिकिञ्चन—' वेद वचन है। मन से ही परात्पर परब्रह्म का अनुभव करो। आगे 'दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्म दर्शिभिः'—सूक्ष्मदर्शी लोग अग्रयाप्रज्ञा के द्वारा उस परात्मा परब्रह्म का रसास्वादन करते हैं। तो इन्द्रियां बेचारी तो उसके अनुभव से वंचित ही हैं। 'न चक्षुसा पश्यति कश्चिदेनम्'—आँख से कोई भगवान् को देख नहीं सकता। तो इन्द्रियां बेचारी बड़ी दुःखी हैं। तप करने लगीं। तप किया। युग-युगान्तर कल्पकल्पान्तर तक इन्द्रियों ने तप किया। भगवान् प्रसन्न हुए। कहा—'वरंब्रूत'—वर मांगो। तो इन्द्रियों ने कहा कि आपने हमको बहिर्मुख बनाकर हमारी हिंसा कर डाली। 'प्रिय वियोग सम दुःख जग नाहीं'—दुनिया में दुःख अगर कोई है तो प्रियतम का विप्रलम्भ, प्रियतम के विप्रलम्भ से बढ़कर कोई दुःख वेदना नहीं। तो जिस रस को बुद्धि अनुभव करती है, जिस रस को मन अनुभव करता है, उस रस के अनुभव से हम वंचित इन्द्रियां ?—तब भगवान् ने उनको वरदान दिया—'अच्छा ! तुम अनुभव करो हमारा।' तब भगवान् अदृश्य, अग्राह्य, अलक्ष्य, अचिंत्य, अव्यपदेश्य होने पर भी सगुण-साकार-सच्चिदानन्दघन परब्रह्म श्रीकृष्ण के रूप में आ गये और इन्द्रियों से कहा तुम रूप को देखो। इन्द्रियों ने रूप देखा। यह रूप, रूप नहीं है। यह तो अदृश्य, अग्राह्य 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् तथा रसमनित्यमगन्धवतृयत्' जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अखण्ड, अनन्त 'ब्रह्म' हैं वही श्रीकष्ण का रूप है। जो अखण्ड, अनन्त दिव्य ब्रह्म है वही कृष्ण के मंगलमय अंग का सौगन्ध्य है। जो अशब्द-अग्राह्यं-अलक्ष्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य ब्रह्म है वही श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द का मंगलमय स्वरूप है। अब उस रस को आँखें अनुभव करती हैं। सूरदास महाराज को भगवान् ने दर्शन दिया। कुआं में गिर पड़े थे। भगवान् ने अपनी विशाल बाहु फैलाकर निकाला। भगवान् के हस्तारविन्द का स्पर्श पाकर अङ्ग-अङ्ग रोमांचितकण्टकित हो गये। आनन्दाश्रुओं से आँखें भरपूर हो गई। प्रभु ने अनुग्रह किया, मुखचन्द्र का दर्शन भी किया, सुस्पर्शामृत का रसास्वादन किया, सौन्दर्यमृत का रसास्वादन किया तो भगवान् ने कहा—"अब जायेंगे।' 'हां महाराज जाना'—और पकड़ा जोरों से—छुड़ा लिया भगवान् ने। सूरदास कहते हैं—

'हस्तमुत्तक्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥'

हे कृष्ण ! आप सर्वज्ञ हो, सर्वशक्तिमान् हो। मुझ जैसे अल्पज्ञ अल्प शक्तिमान् जीव से छुड़ाकर चले जाना कोई बड़ी बहादुरी तो नहीं। एक सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् एक अल्पज्ञ

अल्पशक्तिमान् के हाथ से छुड़ाकर चला जाये, तो कोई बड़ी बहादुरी तो नहीं। हां–'हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते'। हम आपका पौरुष देखें–आप हमारे हृदय से जाओ तो। हृदय से जाकर देखो जरा। जा सकते हैं ? तो मतलब क्या ?

'लाह'–लाह चैलेंज दे रही है हरिद्रा रंग को। 'लाह' (लाख) होती है कठोर लेकिन अग्नि के सम्बन्ध से वह पिघल जाती है। पिघल जाती है। तो चित्त हमारा लाह के तुल्य है वह भगवद्विषयक काम से पिघल जाता है। भगवद्राग से पिघल जाता है, भय से वह पिघल जाता है। तो भगवद्विषयक राग से मन हमारा पिघल जाये, उस पिघले हुए मन में जो भगवान् की आकृति अंकित होती है वह ऐसी अडिग होती है कि वह निकाले नहीं निकलती। कृष्ण भी चाहें कि हम निकल जायें वह रंग चाहे हम निकल जायें तो पिघली हुई लाह में हरिद्रा रंग डाल दो, पिघली हुई लाह में हल्दी का रंग डाल दो। अब हल्दी के रंग से कहो तुम निकल जाओ। देखो है सामर्थ्य हल्दी की ? पिघली हुई लाह में से हल्दी कैसे निकलेगी ? या लाह चाहे कि हम रंग को निकाल दें तो लाह चाहने पर भी रंग को अपने में से निकाल नहीं सकती और रंग चाहे भी तो लाह से निकल सकता नहीं–ऐसे ही भक्त के द्रवीभूत, भक्त का पिघला हुआ जो अन्तःकरण। भक्त के पिघले हुए अन्तःकरण में जो भगवान् का प्राकट्य है वह प्राकट्य अडिग है। ऐ ! भगवान् भी चाहें तो उसके हृदय से निकल नहीं सकते या भक्त भगवान् को निकाल दें–भक्त भी लाचार है। सुनते हैं एक गोपांगना कृष्ण के प्रेम में मूर्च्छित हो गयी। उसकी सखी उस पर गुलाब जल छिड़कर पंखा झल रही है। एक तीसरी सखी कृष्ण की चर्चा छेड़ती है। वह क्या कहती है चुप, चुप–**'सन्त्यजसखि तदुदन्तं यदि सुखलबमपि समीहसे सख्याः। स्मारय किमपि तदितरत् विस्मारय हन्त मोहनं मनसः।'** हे सखी! अपनी प्राण प्यारी सखी को एक क्षण के लिए भी विश्राम चाहती है तो इस समय तू उनकी चर्चा न चला–'तदुदन्तं'–सखि उनका उदन्त, मदन मोहन श्यामसुन्दर की चरित्रगाथा को इस समय मत छेड़। यदि अपनी प्राण प्यारी सखी का क्षण भर के लिए विश्राम चाहती हो। माने। मूर्छा भी अच्छी। मूर्छा से इसको सुख है, मूर्छा खुल जायेगी तो जैसे विषम विष-सम्पृक्त तेल में पड़ा हुआ प्राणी तड़पता है–कड़ाह में चढ़ा हुआ तेल, उसमें जहर डाल दिया–संखिया–तो विषमविष सम्पृक्त तैल परिपूर्ण कड़ाह में पड़ा हुआ प्राणी जैसे तड़पता है, ऐसी ही यह विरहजन्य तीव्रताप वेदना में संतप्त हो रही है। मूर्छा है। इस समय चुप रह चुप। इसको क्षणिक विश्राम मिल जायेगा मूर्छा में–

'सन्त्यज सखि तदुदन्तं यदि सुखलवमपि समीहसे सख्याः'।

क्या करूं ?–'विस्मारय हन्त मोहनं मनसः'। श्यामसुन्दर से भिन्न किसी दूसरी चीज की चर्चा चला–'विस्मारय हन्त-मोहनं मनसः'–श्यामसुन्दर को इसके मन से किसी तरह से विस्मारय-भुला दे। वह परेशान है कृष्ण को अपने मन से निकालने के लिये। कोई महामुनीन्द्र, योगीन्द्र, अमलात्मा, परमहंस सुन रहा है। वह कहता है–

'प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनोधित्सति।
बालासौ विषयेषु धित्सति मनः प्रत्याहरन्ती ततः॥

यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त ! हृदये योगी समुत्कण्ठते।
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षते॥

वहाँ महा मुनीन्द्र कहते हैं कि हम लोग प्रत्याहार करते हैं। यम-नियम, आसन, प्राणायाम्, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान, समाधि-अष्टाङ्ग योग-युक्त मन से संसार से मन को हटाकर भगवान् के चरणों में लगाने की कोशिश करते हैं—'प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन्मनोधित्सति' और यह बाला—'विषयेषु धित्सति मनः प्रत्याहरन्ती ततः'—भगवान् से प्रत्याहार करती है, भगवान् से अपना मन हटाती है। हटा-हटाकर विषयों में लगाना चाहती है पर असफल होती है। इसका मन भगवान् से निकलता ही नहीं, विषयों में लगाने की कोशिश करती है पर विषयों में मन जाता नहीं, विषयों में लगाने की कोशिश करती है पर विषयों में मन जाता नहीं। भगवान् से मन हटता नहीं—'यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त ! हृदये योगी समुत्कण्ठते'—जिसके क्षणिक स्फूर्ति के लिए बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा, परमहंस तरसते रहते हैं, तरसते रहते हैं—'मुग्धेयं—वह मुग्धा—'हंत' तस्य हृदयात् निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षते'—उस श्यामसुन्दर को हृदय से निकालने के लिए परेशान है। इस तरह से लाह किसी को निकालने की कोशिश करे। रंग को तो लाह भी सफल नहीं होगी और रंग लाह से निकलने की कोशिश करे तो वह भी सफल नहीं होगा। कई बार भगवान्—एकादश में लिखा है—कहते हैं कि—**'विसृजति न यस्य हृदयं हरिरित्यवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।'** भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, अन्न्त ब्रह्माण्ड नायक भक्त के द्रवीभूत हृदय में सन्निविष्ट होकर, प्रविष्ट होकर चाहे तो भी वहां से निकल सकते नहीं। सर्वज्ञता कुण्ठित। सर्वशक्तिमत्ता कुण्ठित। भगवान् भक्त के हृदय के चाहने पर भी निकलने में असमर्थ है। तो यह एक विशिष्ट स्थिति है, प्रीति की स्थिति है। इस प्रकार वृन्दाबनधाम में कृष्ण हैं सच्चिदानन्द रससार सरोवर समुद्भूत सरोज, महालक्ष्मी, योगीन्द्र अमलात्मा परमहंस और तो और ऐसा स्वरूप है, जिस स्वरूप माधुर्यमें बरबस लीन होना पड़ता है इसलिए—'भगवानपि'—भगवान्—'अपि' कहा—और तो जीव, जीव अल्पज्ञ है, अल्पशक्तिमान् है। एक विचार है भागवत् में—भई! सनकादि, शुकादि बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनींद्र, अमलात्मा, परमहंस भगवान् को क्यों भजते हैं ?

'नहिं प्रयोजनेन बिना मन्दोपि प्रवर्त्तते'

बिना प्रयोजन के किसी मन्द की भी प्रवृत्ति नहीं होती। महामुनींद्रों को कोई प्रयोजन तो है नहीं, जीवनमुक्त हैं। ब्रह्मात्मपद प्राप्त है। अर्थ चाहिए नहीं, काम चाहिए नहीं, धर्म भी चाहिए नहीं, ज्ञान-विज्ञान-मोक्ष भी चाहिए नहीं, क्योंकि सब प्राप्त है तो योगीद्र मुनीद्र अमलात्मा, परमहंस भगवान् को क्यों भजते हैं ?

'आत्मा रामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः॥''

बोले आत्माराम जो मुनि हैं, सदा सर्वथा आत्मा में ही जो आसमन्तात् रमण करते हैं, निर्ग्रन्थ हैं : आत्मा अनात्मा का अन्योन्यअध्यासरूपी ग्रन्थि जिनकी खुल गई हैं, जो सारे ग्रन्थों के पारंगत हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिष्ठान परात्पर परब्रह्म में परिनिष्ठित होने के

कारण पुस्तकें सब छूट गईं उनकी।

**'यदा ते मोहकलिलं, बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥'**

जब वृद्धि मोहकलिल को पार कर जाये जो सुना है और जो सुनने वाला आगे है सबसे वैराग्य हो जाता है। तो निर्ग्रन्थ जो है, महामुनींद्र अमलात्मा परमहंस, तत्त्वदर्शी, आप्तकाम पूर्ण काम, आत्माराम, परमनिष्काम वह भगवान् कृष्ण को क्यों भजते हैं कोई प्रयोजन तो नहीं है ? तो कहा—कि हां ! बात ठीक है कोई प्रयोजन तो नहीं है। फिर क्यों भजते हैं? बोले—वह ऐसा भगवान् का स्वरूप ही है जिसमें आत्माराम जो निर्ग्रन्थ भी निष्काम भी न जाने क्यों उसको भजते हैं ? न जाने क्यों ? उसमें एक आत्माराम—चित्ताकर्षकत्व गुण हैं। आत्मारामों के मन को खींचने की कोई अद्भुत ताकत है एक चुम्बक, चुम्बक जो है चुम्बकमणि होती है। उसी तरह स्वच्छ लोह जो होता है उसको खींचता है। स्वच्छ लौह को चुम्बक मणि खींच लेता है। ऐसे ही चुम्बकमणि से भी अनन्तकोटि गुणित अद्भुत आकर्षण कृष्ण में है। विशेषकर के योगींद्र मुनींद्र, अमलात्मा, परमहंसों को अपनी ओर खींच लेते हैं। यह—'इत्थंभूत गुणो हरिः'। भगवान् के अद्भुत गुण ही हैं। यहाँ 'अपि' है 'अपि' 'आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्थ अपि उरुक्रमे'—'अपि' कहता है—है तो यह अनुचित। इसमें कोई युक्ति नहीं है, तर्क नहीं है। निर्ग्रन्थ होकर भी आत्माराम होकर भी भगवान् में भक्ति करते हैं। परन्तु उनके लोकोत्तर ऐसे गुण ही हैं। क्या करें तब बोले ! यह तो महामुनींद्रों, योगींद्रों का मन आकर्षण किया भगवान् ने, परन्तु यहाँ भगवान्-अपि'गोपांगनाओं का जो अद्भुत महात्म्य है, अनन्त सौन्दर्य है, अनन्त माधुर्य है, अनन्त प्रेम है उस प्रेम को निहार करके 'भगवानपि ता रात्रीः' उन रात्रियों को देखा। यहाँ यह समझ लेना चाहिए इन गोप कन्याओं ने कात्यायनी अर्चन व्रत किया, कात्यायनी पूजन किया। उत्तम दूल्हा पाने के लिए कात्यायनी की पूजा करनी आवश्यक और उत्तम दुल्हिन पाने के लिए भगवान् श्यामसुन्दर ने शिवजी की पूजा की। शिवजी की पूजा की। उत्तम वस्तु की प्राप्ति, बिना शिव की आराधना के नहीं होती। तुलसीदास जी कहते हैं—'इन सम काहु न शिव आराधे'। चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज दशरथ ने जो राघवेन्द्र रामचन्द्र जैसे पुत्र पाया। या जनकजी महाराज ने जो जनकनन्दिनी दिव्य कन्या को प्राप्त किया, क्यों प्राप्त किया ? वे कहते हैं—

**'इन सम काहु न शिव आराधे।
नाहिन इन समान फल साधे॥**

इनके समान किसी ने शिव का आराधन नहीं किया और इनके समान किसी ने फल सिद्धि नहीं की। यह सर्वोत्कृष्ट है इन्होंने शिव की आराधना की तभी राघवेंद्र रामचन्द्र परात्पर प्रभु मिले और इनको जगज्जननी जानकी मिलीं। इसी तरह से राधारानी वृषभानुनन्दिनी, नित्यनिकुञ्जेश्वरी रूप दुल्हिन को पाने के लिए श्यामसुन्दर मदनमोहन ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्र ने शिव की आराधना की। कौन शिव की आराधना की ? बोले शिव की। एक है कृष्णोपनिषद्। अष्टोत्तरशत उपनिषद् में एक है कृष्णोपनिषद्। उस कृष्णोपनिषद् में लिखा है कि—

'वन्श्यस्तु भगवान् रुद्रः'

बांस की वन्शी जो कृष्ण के हाथ में है वह क्या है ? बोले यह तो रुद्र है, भूतभावन विश्वनाथ शिव है। शिवकी आराधना की कृष्ण ने। शिव बन्सी बने उनकी आराधना की। शिवजी बन्शी बने उनकी आराधना कैसी। बोले सिंहासन चाहिये ना देवता को विराजने के लिए सिंहासन। तो कृष्ण चन्द्र परमानन्दकन्द ने अपने मुखचन्द्र का ही सिंहासन बना दिया मुखचन्द्र के सिंहासन पर रुद्र रूपी बंशी को विराजमान् कराया और अपने मुकुट का छत्र धारण किया और कानों के कुण्डलों से उनका नीराजन किया और हस्तारविन्द के अंगुलदलों से उसका पैर दबाया पाद संवाहन किया और नैवेद्य भी तो चाहिए तो मुख्य चन्द्र के सुमधुर अधर सुधारस से नैवेद्य लगाया तो वह क्या है ? शिव की आराधना करने से तो फिर क्या वरदान मिला कि एक बार बंशी बजाओ लो। वह जो कहा था ना कि—

'सान्द्रोन्माद परम्परामुपनयत्यन्यत्र वंशीरवः।

जहां कृष्ण ने—

'एक स्वितश्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरम्।'

कृष्ण एक यह नामाक्षर सुनते ही बुद्धि विभोर हो जाती है। सर्वस्व न्यौछावर करके, सर्वस्व न्यौछावर हो जाता है, मन बुद्धि सब कुछ और इनके मुख चन्द्र से निर्गत वेणु गीतामृत का रसास्वादन करके तो सान्द्र-उन्माद की अखण्ड धारा चल पड़ती है इस दृष्टि से राधारानी वृषभानुनन्दिनी नित्य निकुञ्जेश्वरी और श्रीकृष्ण चन्द्र परमानन्दकन्द मदन मोहन और इसी प्रकार से राधारानी की अंगभूता गोपांगना—सब क्या है ?—'कायव्यूहरूपा' जैसे पहले योगीन्द्र, मुनीन्द्र होते थे—कायव्यूह की रचना कर लेते थे। एक योगी ने एक लाख देह बना लिया। एक लाख देह बना लिया। करोड़ देह बना लिया—इसको कहते हैं—'कायव्यूह'। तो होता क्या है ? आपने सुना है राजा पृथुने-पृथु,—राजा पृथु वेन का पुत्र पृथु राजा। पृथुराजा ने वरदान मांग लिया भगवान् से, महाराज हमको दस हजार कान हो जाये तब आपके चरित्रामृत का रसास्वादन करें। दो कान से, दो कानों से चरित्रामृत—रसास्वादन में स्वाद—दस हजार कान। यह नई बात नहीं है। असल में बात यह है जिस समय भक्त, भगवान् के मंगलमय मुखचन्द्र के सौन्दर्यामृत का रसास्वादन करने लगता है उनके मन में आता है कि हमारे रोम-रोम में अरबों-खरबों आँखें-आँख हो जाये। उस समय उनके मन की भावना होती है कि हमें और कुछ नहीं चाहिए, हमारे रोम-रोम में करोड़ों-करोड़ों आँखें-आँख हो जायें। केवल प्रियतम के मुखचन्द्र का माधुर्यामृत रसास्वादन करें। प्रियतम के पादारविन्द का सौन्दर्यामृत रसास्वादन करें और जिस समय सुगन्ध का आस्वादन करने लगता है। जिस समय सुगन्ध—भगवान् के पादारविन्द की सुगन्धि का आस्वादन करने लगता है उस समय बुद्धि होती है, मेरे एक-एक रोम में अनन्त अनन्त घ्राण ही घ्राण हो जाये उन घ्राणों से प्रियतम के सौगन्ध्यामृत का ही आस्वादन करते रहें। जिस समय प्रियतम के मुखचन्द्र के अधरामृत का पान करता है भक्त, मन में आता है मेरे अंग-अंग में रोम-रोम में अनन्त-अनन्त रसनाएं ही रसना हो जाये—ऐं—प्रियतम के—ऐं—मुखचन्द्र के—ऐं—माधुर्यामृत का दिव्य अधर सुधा का निरन्तर रसास्वादन करें यह स्वाभाविक प्रीति है। शास्त्रों में लिखा है और व्यवहार में भी ऐसा होता

है कि—'ये'—**बह्व्यःसपत्न्यइवगेहपतिं लुनन्ति।** भक्त कहता है—हे नाथ ! हम कैसे आप का ध्यान करें ?—**'जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षतिमाऽवितृप्ता'** जिह्वा हमको अपनी ओर खींचती है—आओ रसास्वादन करो। नेत्र हमको अपनी ओर खींचता है—आओ ! आओ !! यह रूप का रसास्वादन करो। कान हमको अपनी ओर खींचे लिया जाता है कि आओ ! आओ!! यह दिव्य संगीत का माधुर्यामृत रसास्वादन करो। त्वचा हमको अपनी ओर खींचे जाता है लो ! लो !! इस अद्भुत सुस्पर्शामृत का रसास्वादन करो। 'तस्मिन् कथंत व गतिं विवशा गहीमः' एक तो मन, मेरे एक मन को यह इन्द्रियां सब अलग-अलग अपनी ओर खींच रही हैं।

दृष्टान्त दिया। जैसे बहुत-सी सौत ही सौत। पति एक हो, सौत हो सौ। तो एक कान पकड़ती है, एक नाक पड़ती है, एक चुटिया पकड़ती है, एक पैर पकड़ती है—अपनी-अपनी ओर सौतें उस एक मालिक को खींचती हैं। वह बेचारा परेशान। ऐसे एक मन। एक मन को जिह्वा अपनी ओर खींचती है, श्रोत्र अपनी ओर खींचता है त्वक् अपनी ओर खींचता है, घ्राण अपनी ओर खींचता है, 'बह्व्यः सपत्न्यइवगेहपतिं लुनन्तिः जैसे बहुत-सी सपत्नियां एक गेहपति को नौंचती हैं, अपनी-अपनी ओर खींचती हैं, इसी तरह से तो यह तो विषय की कथा हुई। विषय की कथा हुई और यह भगवान् की कथा—अहा ! आपने सुना कि जो कोई भूत लग जाता है—'ग्रह'।

उपनिषदों में वर्णन है। ग्रह एक अति ग्रह। ग्रह किसी पर ग्रह खराब है। किसी पर सूर्यग्रह है भाई, मंगलग्रह है भाई। ज्योतिषी जी बतलाते हैं शनिग्रह है। यह नवग्रह यह ग्रह है एक ग्रहके चक्कर में पड़ जाये प्राणी तो रोते-रोते दम नहीं मिलता। मंगलग्रह, बुधग्रह, राहुग्रह और एक भूतग्रह पिशाचग्रह होता है। किसी पर पिशाचग्रह लग गया अब उसको परेशान कर रहा है पिशाचग्रह। तैसे ही यहाँ वेद कहता है कि एक 'अष्टौग्रहः' 'अष्टौ अतिग्रहाः' आठ ग्रह हैं और आठ अतिग्रह हैं। यह आँख, नाक, त्वक्, कान यह सब ग्रह हैं। जैसे ग्रह प्राणी को अपने वश में करके नाच नचाता है—ऐं—तैसे ही यह नेत्र प्राणों को अपने वश में करके नाच नचाता है। घ्राण अपने वश में करके प्राणी को नाच नचाता है। श्रोत्र अपने वश में करके प्राणी को नचाता है। यह ग्रह हैं जैसे मंगलग्रह, भूतग्रह, पिशाचग्रह यह प्राणी को अपने वशीभूत करके नाच नचाते हैं। तैसे ही श्रोत्र, त्वक्, चक्षु आदि ग्रह! और इन ग्रहों पर भी एक अतिग्रह है। कौन ? वह है रूप। रूप जो है वह आँख को पकड़कर नाच नचाता है, आँख ने तो मन को जीवात्मा को अपने वश में करके नाच नचाया और आँख को अपने वश में करने वाला रूप है रूप। और घ्राण को वश में करने वाला गंध क्या है ? सुना है एक श्लोक—

'कुरंङ्ग मातंङ्ग पतङ्ग भृङ्ग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च'

कुरंग जो है हिरन उनको शब्द ने खींच लिया मृगणु ने बीन बजाया। व्याध ने बीन बजाया। बीन का माधुर्यामृत रसास्वादन करके भूल गया और व्याध ने बाण मार दिया। कुरंग तो शब्द ही के वशीभूत होकर मारा गया और पतंग ? दीपों पर कूद-कूद पर मरने वाले पतंग। वर्षा ऋतु में दीपकों पर, बिजलियों के लट्टुओं पर कूद-कूद कर मरने वाले।

हमारे वैज्ञानिक कहते हैं किसी को उपदेश मत करो, उपदेश से फल नहीं होता। अपने आप परिस्थिति से सबक सीखकर प्राणी बुरे काम को रुकेगा। किसी को रोको मत! शराब मत पियो—किसी को रोको मत, स्त्री से प्यार मत करो, किसी को रोको मत, अमुक मत करो। स्वयं प्राणी उसके दुर्गुण को अनुभव करके परिस्थिति से सबक सीखकर रुकेगा। हमने कहा पागल ! यह पतंग अरबों-खरबों वर्षों से परिस्थिति से सबक सीख रहे हैं अभी तक सबक सीख पाये ? इनके द्वारा दादा परबाबा लाख पीढ़ी, हजार पीढ़ी, करोड़ पीढ़ी के पुरखा कूद-कूद कर दीवों पर, दीपकों पर कूद-कूद कर मर गये यह कुछ तो सबक सीखते, कहाँ सबक सीख रहे हैं ? ऐ यह तो वहां अंधपरम्परा के साथ दीपकों पर कूद-कूद कर मरते जायेंगे। रस का स्वाद है, रूप का स्वाद है। रूप के नाम पर, रूप के नाम पर अपने सर्वस्व का बलिदान। पंख जल जाते हैं, स्वयं उं स्वयं उं चीखते हैं, पुकारते हैं, तड़पड़ाते हैं मरते हैं, उसी मरने का स्वाद लेते हैं। तो इन कुरङ्ग-मातङ्ग-मातङ्ग, हाथी-स्पर्श'। एक कागज का हाथी बना देते हैं, काग़ज का हाथी खन्दक में। कागज के हाथी का स्पर्श करने के लोभ से। यह एक-एक। किसी को शब्द ने काबू में कर मार डाला, किसी को स्पर्श ने काबू में करके फंसा दिया, किसी को रूप ने काबू में करके फंसा दिया, किसी को रस ने। 'कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग, भृङ्ग'—भृङ्ग जो है भंवरा रस का रसिक है। अहा ! किसी कमल का मकरन्द रसपान करता हुआ भ्रमर तल्लीन हो गया। तो सूर्य अस्ताचल को चले गये, सूर्य डूब गये। कमल सम्पुटित हो गया, कमल सम्पुटित हो गया। कैद हो गया भ्रमर। कमल में कैद हो गया—चाहता तो भ्रमर कठोर में कठोर काष्ट में छिद्र करने की ताकत रखता है, कठोर से भी कठोर काष्ट में छिद्र करने की ताकत रखता है, कोमल कमल की पंखरियों को काट नहीं सकता ? काट सकता है। तो क्या सोचता ?

'रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्'।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकज श्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोष गते द्विरेफे
हा ! हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥''

उसने सोचा—रात्रिर्गमिष्यति'। अरे भई क्या करें—ऐं—है तो हम में ताकत कठोर से कठोर में भी छिद्र कर सकते हैं परन्तु कोमल कमल की पंखुरियों को काटना उचित नहीं।

'रात्रिर्गमिष्यति'—रात्रि तो बीत जायेगी। भविष्यति सुप्रभातम्—फिर सुप्रभात होगा। 'भास्वानुदेष्यति' सूर्य नारायण फिर पुनः प्रज्वलित होंगे और फिर 'हंसिष्यति पंकज श्री' कमल भी पुनः प्रफुल्लित होंगे। फिर निकल जायेंगे क्या बात है। 'रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्। भास्वानुदेष्यति हंसिष्यति पंकज श्रीः। इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे, हा ! हन्त हन्त—इतने में कोई गजेन्द्र आया उसने नलिनी को उखाड़ लिया और पैरों के नीचे रौंद डाला, खत्म हो गया मन की बात मन में रह गई। तो कहने का अभिप्राय ? एक शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध यह एक-एक विषय है। उन-उन प्राणियों को अपने-अपने प्राणियों को अपने-अपने वश में मौत के मुख में डालते हैं। कुरंग मातंग पतंग भृङ्ग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च' एक-एक शब्द स्पर्शादि प्रपंच में फँसकर यह सब मारे जाते हैं और वह जो प्रमादी

सकथं न हन्यते—वह क्यों न मारा जाये, जो पांचों इन्द्रियों से पांचों विषयों के सेवन में निरन्तर लगा हुआ है ? जो नेत्र से रूप का रसास्वादन कर रहा है। कान से शब्द का रसास्वादन कर रहा है। घ्राण से गंध का आस्वादन कर रहा है—"एकः प्रमादी स कथन्नहन्यते यद्सेव्यते पंचभिरेव पञ्च'। तो इसलिए इन्द्रियां ग्रह हैं। 'अष्टौग्रहः--आठ ग्रह हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित्त। यह सब आठ ग्रह—आठ ग्रह और इन आठों ग्रहों को अपने काबू में करने वाले—'अतिग्रहः'—उनको अतिग्रह कहते है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादि यह सब अति ग्रह हैं। ग्रह-अतिग्रह दोनों के बंधन में पड़ा हुआ जीवात्मा अपारसंसार समुद्र में डूब रहा है, उतराय रहा है। पर एक है 'कृष्णग्रह'—'कृष्ण ग्रह?'। श्री प्रहलाद को कृष्ण-ग्रह ने पकड़ा। उनको ग्रह नहीं अतिग्रह नहीं, कृष्णग्रह ने पकड़ा तो 'कृष्णग्रह-गृहीतात्मा' श्रीकृष्ण-ग्रह ने जिसको ग्रहण कर लिया, पकड़ लिया वह उसके ग्रह अतिग्रह उसके बंधनों से मुक्त हो जाता है। तो—कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्—वह जगत् के स्वरूप को समझता है कि क्या है जगत् ? तो इन सब दृष्टियों से आया कि—

"आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः॥"

तो भगवान् के रूप में जिनका मन गया। भगवान् के रस में जिनका मन गया, तो और तो और भगवान् जाने लगे। सूरदास ने कहा महाराज मेरी आँखें जैसी थीं वैसा बनाके जाओ मेरी आँखें जैसी थी वैसी बनाके जाओ। भगवान् ने कहा, क्यों आँखें रहने दो ठीक है। बोले—क्या करेंगे ? जो आँख का फल था—'जिन नयनों ने इन रूप लख्यों उन नयनन सो अब देखिए काहा।' जिन नयनों ने कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द के मंगलमय मुख के मंगलमय माधुर्यामृत का रसास्वादन किया उन नयनों से अब क्या देखना है ? अब क्या देखना है—ऐं—तो आँखों को भगवान् ने कहा वेणुगीत में—

"अक्षण्वतां फलमिदन्नपरं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।"

और बोला—'अक्षण्वतां' अक्षणो इदमेवफलं। आँख वालों की आँखों का यही फल है और कुछ नहीं। विधाता ने आँख दिया तो आँख वाले लोगों के आँखों का परमफल यही कि वे श्रीकृष्णचन्द्र परमानंदकंद ब्रजेन्द्र नंदन के मंगलमय मुख चंद्र का दर्शन, उनके पादारविन्द के नखमणि चन्द्रिका का दर्शन, उनके दामिनी द्युति विनिन्दक पीताम्बर का दर्शन, उनके मंगलमय श्री अंग के अनंत सौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध्य का आस्वादन ही आँखों का यही फल है। तो क्या हुआ ? इन्द्रियों को भगवान् ने वरदान दिया था। वरदान दिया था तपस्या करने के उपरान्त, तुम उस ब्रह्म रस का आस्वादन करोगे इसलिये श्रीकृष्ण मंगलमय मुखचंद्र का यह रूप, यह रस, यह गंध, यह शब्द यह स्पर्श-प्राकृत रूप नहीं, प्राकृत रस नहीं, प्राकृत गंध नहीं—तो क्या है ? वही **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् तथा रसमनित्यमगन्धवत् यत्। अनाद्य अनंत महतः परं ध्रुवम्।'** जो अदृश्य, अग्राह्य, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य, परात्पर परब्रह्म वह पर परब्रह्म ही यहाँ का रूप है, परब्रह्म ही यहाँ का गंध है, परब्रह्म ही यहाँ का रस है, परब्रह्म ही यहाँ का लोकोत्तर माधुर्य है। इसलिये भगवान् ने—इसीलिये 'वृन्दावनगोचरेण'। वृन्दावन में भगवान् ने गौवों को माने इन्द्रियों को, गौवों का माने इन्द्रियों

को भगवान् ने ब्रह्म रस का आस्वादन कराया। वृन्दावन धाम में। जो ब्रह्म सदा-सर्वदा इन्द्रियों का अगोचर था, मन का अगोचर था वही इनकी तपस्या से सन्तुष्ट हो करके वही परात्पर परब्रह्म इन्द्रियों को भी भक्तों के मन की श्रोत्र-त्वक् चक्षुरादि इन्द्रियों को भी उस—'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्', परात्पर परब्रह्म का रसस्वादन कराया। इस तरहसे जो अमंत सच्चिदानंदघन परात्पर परब्रह्म है वही श्रीकृष्ण है और उसकी दिव्य शक्तियां श्री गोपांगना हैं, उसकी माधुर्य सार सर्वस्व की अधिष्ठात्री राधारानी वृषभानुनदिनी हैं, वृन्दावनधाम भी पूर्णानंद रससार सरोवर समुद्रभूत सरोज है। सब रस ही है। वृन्दावन धाम भी रस है। कृष्णचंद परमानंदकंद भी रस है। राधारानी वृषभानुनन्दिनी भी रस है। श्री गोपांगना जन भी रस है। इसलिये वृन्दावनधाम के भक्त कहते हैं—'विपिन राज सीमा के बाहर हरिहूं को न निहार, रे मन वृन्दावन विपिन निहार'। हे मनः तू वृन्दावनविपिन का दर्शन कर।

वृन्दावन के बाहर जो श्रीकृष्ण भी हो तो गोपियों तुम कृष्ण को मत देखो। वृन्दावनधाम की परिक्रमा करने जा रहे हो अगर दांये कृष्ण दीखता है तो उसको देखो। अगर बांये कृष्ण दीखता है तो उसको मत देखो—'विपिनराज सीमा के बाहर हरिहूं को न निहारो।'

राधा सुधानिधि एक बड़ा दिव्य ग्रन्थ है। वह कहते हैं—

'राधा करावतित पल्लव वल्लरीके।
राधा पदान्तविलसन मधुस्थलीके॥
राधा यशो मुखरमत्त खगावलीके।
राधा विहार विपिन रमतां मनो मे॥

देख मेरे मन, हे मेरे मन ! राधारानी वृषभानुनंदिनी का जो बिहार विपिन है। श्रीमद्वृन्दावनधाम उसमें रमण कर। तो कैसा वृन्दावनधाम ? बोले—'राधाकरावतितपल्लव वल्लरीके, राधारानी वृषभानुनंदिनी जिसके पल्लवों को अपने हस्तारविंद से स्पर्श करें। वृन्दावनधाम के जो वृक्ष हैं, उनके जो पल्लव हैं, उनकी जो लताएं हैं, राधारानी वृषभानुनंदिनी के मङ्गलमय हस्तारविंद से वृन्दावनधाम के पल्लवों का स्पर्श होता है। 'राधा करावतित पल्लव वल्लरीके' जिस वृन्दावनधाम के पल्लव और वल्लरियों को राधारानी वृभुभानुनंदिनी स्पर्श करती हैं। 'राधापदांत विलसन् मधुरस्थलीके'—जिस वृन्दावनधाम की मधुर स्थली में राधारानी के मङ्गलमय पादारविंद का चरण चिह्न अंकित है। राधारानी के चरणारविंद का चिह्न अंकित है। जिस वृन्दावनधाम में, ऐसे वृन्दावनधाम में जहां राधारानी वृषभानुनंदिनी का मधुर मनोहर मङ्गलमय चरणारविंद अंकित है। जिसके पल्लवों को राधारानी स्पर्श करती हैं। और कैसा ? 'राधा यशोमुखरमत्त खगावलीके'—जहां के हंस, जहां के सारस, जहां के कारण्डव, जहां के विहंग, जहां के पक्षी राधा का ही यशोगान करते हैं। यहाँ की भृङ्गावली-भृङ्ग का गुञ्जारव क्या है ? राधारानी वृषभानुनंदिनी के ही मधुर मनोहर मङ्गलमय गुणगान करने में—'राधायशोमुखर मत खगावलीके' नहीं राधारानी खगावली, के मंगलमय यश को ही गान करके मुखर हो रहे हैं। यहाँ की खगावली मुखर हो रही है। राधाविहार विपिने रमतां मनोमे'—ऐसे राधारानी के विहार विपिनमें मन तू रमणकर। तो तात्पर्य यह है कि

वृन्दावनधामकी ऐसी शोभा जैसे बताया कि वृन्दावनधाम में ही उस कमल में ही किञ्जल्क होगा, किञ्जल्क में ही पराग होगा, पराग में ही मकरन्द होगा। ऐसी ही श्री वृन्दावनधाम में ही गौरांगी गोपांगनाएं होंगी, गौरांगी गोपांगनाओं में ही श्रीकृष्णचंद परमानंदकंद होंगे। श्रीकृष्णचंद्र परमानंदकंद में ही श्री राधारानी वृषभानुनंदिनी होंगी। इस तरह से एक अंतरंग से अंतरंग किशोरी जी के प्रति तथा भक्तों की बड़ी ऊंची भावना है वृन्दावनधाम के प्रति। अवधधाम के लिए भी भगवान् राम ने कहा–

'यद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना।
वेद पुरान विदित जग जाना॥
अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ।
यह प्रसंग जाने कोउ कोऊ॥'

इस प्रसंग को कोई-कोई जानता है। बैकुण्ठ बड़ा महत्वपूर्ण है, 'वेदपुराण विदित जग जाना' वैकुण्ठ की बड़ी महिमा है, पर 'अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ' अवध के तुल्य वह भी हमको प्रिय नहीं है। क्या मतलब ? मतलब वही जो पहले हमने कहा। यह लीलाधाम है, भगवान् का। लीलाधाम भगवान् का। भगवान् का धाम भगवान् ही होता है। देखो! जो वस्तु परिच्छिन्न है वह वस्तु किसी दूसरे में रहता है जैसे पार्थिव प्रपंच कहां है ? पृथिवी में। पृथिवी कहां है ? जल में। जल कहां है ? तेज में। तेज कहां है ? वायु में। वायु कहां है ? आकाश में। आकाश कहां है अहंतत्त्व में है। अहंतत्त्व कहां है ? महत्तत्व में है। महत्तत्व कहां है ? अव्यक्ततत्त्व में है। अव्यक्ततत्त्व कहां है ? अखण्ड अनंत, निर्विकार सत्तत्त्व में है। वह सत्तत्त्व कहां है ? सत्तत्त्व कहां है ?

तो सांख्य सूत्र है 'मूलेमूलाभावद् मूलंमूलं'' सबका मूल का दूसरा मूल नहीं होता। जो सबका मूल, उसका दूसरा मूल नहीं होता। तो जो सबका मूल। अन्तिम सत्व उसका आधार क्या होगा ? 'सर्वाधार जो अन्तिम सत्व उसका आधार क्या होगा ?' इस दृष्टि में सबका आधार भगवान् उसका आधार क्या बन सकता है ? इसलिये भगवान् का धाम भगवान् ही है। इसलिये व्यापी वैकुण्ठ। वृन्दावनधाम व्यापी वैकुण्ठ है। इसीलिये कहा जाता है भागवत ही में है–शेष, शेष भगवान् की शय्या है। शेष माने ? जो बाद में बाकी बचे उसका नाम शेष। शेषनाग भी है। शेष का अर्थ क्या है ? जो बाकी बचे। तकंसीम, तकसीम करते करते जो शेष होता है। तो क्या हुआ ? पार्थिव प्रपंच का विलय हो गया पृथिवी में; पृथिवी का लय हो गया जल में; जल का लय हो गया तेज में; तेज का लय हो गया वायु में; वायु का लय हो गया आकाश में; आकाश का लय हो गया अहं में; अहं का लय हो गया महत्तत्त्व में; महतत्त्व का लय हो गया अव्यक्त में; अव्यक्त का लय हो गया कारण ब्रह्म में; और कारण ब्रह्म ही शेष। शेष कारण ब्रह्म। कारण ब्रह्म पर कार्य कारणातीत ब्रह्म विराजमान है। कारण-ब्रह्म शेष है। शेष की शय्या पर, शेष की शय्या पर कार्य-कारणातीत परात्पर परब्रह्म। शेषशायी भगवान् कार्य कारणातीत-परात्पर परब्रह्म राम का सिंहासन राम का सिंहासन, शेष; शेष ही राम का सिंहासन शेष ही राम की पादुका, शेष ही राम का छत्र; शेष ही पहरेदार बनकर लखनलाल के रूप में, लखनलाल के रूप में शेष ही पहरेदार रहा

है। शेष ही सिंहासन, शेष ही शय्या, शेष ही पादुका, शेष ही छत्र शेष पहरेदार बनकर लखन लाल के रूप में जगमगा रहा है। यह शेष। शेष शेष माने ? तकसीम का अन्त और शेष माने और शेष माने ? उँ-उँ-ऐं-ऐं शास्त्रों की दृष्टि से शेष माने 'अङ्गत' शेष शेषी भाव। शेषी माने अङ्गी शेष माने उसका अङ्ग। तो जिसने अपने आपको भगवान् का उपकरण बना लिया हो उपकरण। जैसे माना जाता है शेष भगवान् के उपकरण हैं। और भाई! बड़े रहस्य हैं। भक्त लोग अपने आपको भगवान् की माला बना देते हैं। सुना है ? कहा जाता है—राधारानी वृषभानुनन्दिनी और गोपांगना उनका भूषण क्या ? **''श्रोत्रयोः कुवलयं अक्षणोरंजनं उरसो महेन्द्र मणिताम् वृन्दावन तरुणीनां मण्डलमखिलं हरिर्जयति''** वह जो गोपांगनाजनों का कानों में कुण्डल हैं। कमल का कुण्डल, कमल कुण्डल। जो गोपांगनाजनों के कानों का कुण्डल है वह कमल कुडमल क्या है ?—अरे श्यामसुन्दर मदन मोहन ही कमल कुण्डल बनाकर अपनी प्यारी राधारानी वृषभानुनन्दिनी रासेश्वरी के श्रोत्र के कानों में कुण्डल बन गये और वहीं राधारानी के नयनों के अंजन बन रहे हैं। राधारानी कारिखा नहीं आँखों में पोरती। किन्तु प्राणनाथ प्रियतम परम-प्रेमास्पद प्रभु को ही अपनी आँखों में अंजन बनाकर रखती है और उरस्थली में महेन्द्र नीलमणि की माला। इन्द्र नीलमणि की माला कौन ? श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनंदन मदनमोहन ही इन्द्रनील मणि की माला के रूप में अपनी प्राणेश्वरी के उरस्थल में विराजमान है और उरोजों में मृगमद् है—मृगमद, कस्तूरी; मृगमद के रूप में प्राणनाथ प्रियतम परम-प्रेमास्पद श्रीकृष्ण ही उरोजों में मृगमद बनकर, जगमगा रहे हैं। अन्त में कहते हैं—मण्डनमखिलं हरिर्जयति—'श्रोत्रयोः कुवलयं' कानों में कुण्डल, ''अक्षोरंजनं'-आँखों में अंजन; 'उरसो महेन्द्रमणिताम्'—उरस्थलीमें जो महेन्द्र नीलमणिकी माला अन्त में कहते हैं—'मण्डनमखिलं हरिर्जयति सम्पूर्णमण्डलं, सम्पूर्ण अलंकार गोपांगनाओं का सब अलंकार श्यामसुन्दर ही हैं उन्होंने कंकर-पत्थर का अलंकार नहीं पहिना। ऐं गोपांगनाओं ने कंकर-पत्थर का अलंकार नहीं धारण किया। अपने श्यामसुन्दर मदन मोहन को ही अपने अंगों-अंगों का अलंकार बनाया।

ऐसे ही श्यामसुन्दर मदनमोहन के अंग में जो पीताम्बर है वह क्या है ? राधारानी वृषभानुनन्दिनी रासरासेश्वरी ही पीताम्बर बनकर अपने श्यामसुन्दर मदन मोहन के अङ्ग को आलिंगन किये हुए है विराजमान है। उनके अंग में कुंकुममिश्रित हरिचन्दन 'सर्वांगेहरि चन्दनं सुललितम्'—सुललितमृचन्दनम्—केशरयुक्त चन्दन वह क्या है ? वह राधारानी वृषभानुनन्दिनी ही कुंकुम मिश्रित चंदन के रूप में अपने प्रियतम के अंग में विराजमान हैं। इस तरह से भक्त, भक्त, स्वयं माला बनकर भगवान् की सेवा करता है। पादुका बनकर भगवान् की सेवा करता है। सिंहासन बनकर भगवान् की सेवा करता है। छत्र बनकर भगवान् की सेवा करता है। फूल का बंगला बनकर भगवान् की सेवा करता है। नैवेद्य बनकर भगवान् की सेवा करता है। उपकरण अपने आप को बना देता है। उपकरण—माने साधन अपने आपको छाता बना दिया, चंवर बना दिया, माला बना दिया, अंग बना दिया। अनेक रूप में बनाकर के जो भगवान् का शेष हो जाये अर्थात् उपकरण हो जाये। भगवान् के शेषी ही बनाय ले। भगवान् ही जिसका शेषी हो, अंगी हो जो भगवान् का शेष बन जाये अंग बन जाये जो

अपने आपको अपने प्रियतम के लिये पलंग बना देता है अपने आपको प्रियतम का पलंग—आ हा ! अपने आपको प्रियतम की पलंग, पादुका बनादेता है। अपने आपको प्रियतम का छत्र बनादे। अपने आपको प्रियतम का पहिरेदार बना दे उससे बढ़कर दुनिया में कोई भक्त हो सकता है ? जो शेषी ! शेषी माने अंगी शेष माने अंग अपने आपको अंग बना जाये। भगवान् को शेषी बनाले वह शेष शेषी भाव से भगवान् की आराधना बनती है। इसलिये जो बात कह रहे थे कि भक्तों कीभावना जब यह होती है कि दो कान से भगवच्चरित्र सुनना कमजोरी है। दस हजार कान हो वह भी छोटी बात है। हमने कहा नहीं, नहीं रोम रोम में अनंत अनंत कान ही, कान हो जायें प्रभु का चरित्रामृत रसास्वादन करें। सौगन्ध्याघ्राण समय में इच्छा होती है मन में कोटि कोटि रोम में—एक-एक रोम रोम में कोटि कोटि घ्राण हो जायें प्रभुका सौगन्ध्यामृत रसास्वादन करें।

इस तरह से राधारानी के मन में आई बात कि मेरे प्राणनाथ मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनंदन कृष्णचंद इनकी आराधना करने के लिये मैं एक रूप में क्या करूं ?

इच्छा किया। जैसे इच्छा होती है हमारे रोम रोम में, अनंत अनंत कान हो जाये। रोम रोम में अनंत अनंत घ्राण हो जाये। ऐसे ही राधारानी को इस प्रकार इच्छा हुयी। मैं अनंत अनंत रूप में बनकर अपने प्राणनाथ प्रियतम की आराधना करूं। वहीं राधा के यह संकल्प। राधारानी के संकल्प के अनुसार राधारानी वृषभानुनन्दिनी सोई; स्वयं ही अनंत अनंत गोपांगनाओं के रूप में प्रकट हो गयीं। यही कायव्यूहदरबार यही कायव्यूहदरबार'।

इसलिये आपको निकुंज लीला की विशेषता आगे हम बतायेंगे। कहां तक बतायें यह तो बहुत लम्बी राम कहानी है फिर भी जितनी बनेगी।

तो यहाँ की मुख्य बात यह है कि यहाँ की गोपांगना श्रीकृष्ण के स्पर्श की लालसा रखकर, श्रीकृष्ण ब्रजेंद्रनंदन के स्पर्श की लालसा कौन न करे ? भला दुनियां में कोई मनुष्य हो सकता है ? एक बात कहकर समाप्त करते हैं।

एक वासन्तिक रासोत्सव बसन्त ऋतु का रास चल रहा था। बसन्त ऋतु के 'रासोत्सव में रस विशेष विकास के लिए श्यामसुन्दर मदनमोहन अंतर्धान हो गये। जब श्यामसुन्दर मदनमोहन ब्रजेंद्रनंदन अंतर्धान हो गये, तो अब गोपांगनायें श्रीकृष्ण को ढूंढ़ती-ढूंढ़ती वन में भटक रही हैं। दैवात् उस कुञ्जमें गोपांगनायें चली गयीं, जहां भगवान् छिपे हुए थे। तो भगवान् सोचें कि अब क्या करें ? गोपांगनायें तो आ गयीं तो उसी समय भगवान् के शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करके श्रीमन्नारायण परात्पर परब्रह्म विष्णु के रूप में प्रगट हो गये। अब ! तो गोपागनायें जाती हैं, विष्णु भगवान् का दर्शन करती हैं और बोली ! कि ऐ चार भुजाओं के देवता जी महाराज हमारे प्राणनाथ प्रियतम श्यामसुन्दर कृष्णचंद्र मिल जायें—वरदान दो। बस एक मिनट भी ठाड़ी नहीं और आगे चल पड़ीं।

तो अरुन्धती सोच रही है। लोपामुद्रा सोच रही है। सतियों में शिरोमणि अरुन्धती। वशिष्ठ पत्नि सतियों में शिरोमणि—अरुन्धती। लोपा मुद्रा। अत्रि की पत्नि अनुसूइया। यह महा-महा पतिव्रता महाभागा वह गोपांगनाओं को इस निष्टा को देखकर विस्मय के समुद्र में डूब जाती हैं। अरे ! परब्रह्म विष्णु ! उसका अनंत माधुर्य, अनंत सौन्दर्य, दिव्य प्रभा,

कौस्तुभमणि, दिव्य किरीट्, मुकुट, मङ्गलमय अंग की आभा, प्रभा, कान्ति गोपांगनाओं के मन का आकर्षण जरासा भी नहीं। एक मिनट नहीं ठहरी। चार भुजा के देवता को प्रणाम करके अपने कृष्ण का मङ्गल मनाकर लौट पड़ीं। अनुसूइया सोचती है हम पतिव्रता हैं। अरुन्धती सोचती है हम पतिव्रता हैं पर क्या हम परात्पर परब्रह्म विष्णु के, विष्णु भगवान् के सौन्दर्य में मोहित नहीं होती ? हमारा मन मोहित हो सकता है, क्योंकि भगवान् विष्णु का अनंत सौन्दर्य, अनंत माधुर्य, अनंत सौरस्य देखकर हम लोगों का मन मोहित हो सकता है, पर इनका मन मोहित नहीं होता, ये हमसे भी अधिक पतिव्रता हैं। आगे राधारानी आयीं। यह तो गोपांगनाओं की कथा है। आगे राधारानी आयी। तो वह चार भुजा स्वरूप टिका नहीं। इसका क्या मतलब ? इसका मतलब यह है–प्रेम की चार अवस्था होती हैं चार अवस्था। एक तो अणु परिमाण परिमित प्रेम–अणु-अणु परिणाम परिमित प्रेम न हो और एक है मध्यम परिमाण परिमित प्रेम–नारद आदि भक्तों में मध्यम परिणाम परिमित प्रेम होता है। वह कभी संकुचित हो जाता है कभी विकसित हो जाता है–संकोच विकासशाली और एक है महत् परिणाम परिमित प्रेम–यह प्रेम केवल गोपांगनाओं का और एक है परम-महत्-परिणाम-परिमित प्रेम। यह केवल राधारानी का प्रेम है और किसी का नहीं। तो महत् परिणाम-परिमित प्रेम क्या है ? जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा। पूर्णमासी का चन्द्रमा निर्मल है, निष्कलंक है। पूर्णचन्द्र है। तारागण दिखाई देते हैं लेकिन तारागणों का कोई प्रभाव चन्द्रमा पर नहीं पड़ता। तो गोपांगनाओं का जो प्रेम था, महत्-परिणाम-परिमित प्रेम था। माने। निर्मल निष्कलंक पूर्णचन्द्र के तुल्य था। उसके सामने विष्णु का ऐश्वर्य चार भुजा का रूप अनंत माधुर्य, अनंतसौन्दर्य प्रगट तो हुआ; तो कैसे प्रगट हुआ ? जैसे चन्द्रमा के सामने तारा जगमगाते हैं; चन्द्रमा के सामने तारा नक्षत्र ग्रह मण्डल जगमगाते है परन्तु उनका चन्द्रमा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे ही गोपांगनाओं के महत् परिणाम परिमित प्रेम के सामने वह चतुर्भुज भगवान् का दिव्य ऐश्वर्य प्रगट तो हुआ, पर उसका कोई प्रभाव उस निर्मल निष्कलंक पूर्णचंद्र पर नहीं पड़ा। लेकिन राधारानी का प्रेम था वह परममहत्-परिणाम-परिमित प्रेम था। माने। प्रचण्ड मार्तण्ड मण्डल के तुल्य। प्रचण्ड मार्तण्ड मण्डल-सूर्यमण्डल के तुल्य। सूर्यमण्डल के सामने नक्षत्र टिकता ही नही। सूर्यमण्डल का प्राकट्य होने पर नक्षत्र तारागण दिखते ही नहीं। ऐसे राधारानी का जो प्रचण्ड मार्तण्ड मण्डल के तुल्य परम-महत्-परिणाम-परिमित प्रेम वाली राधारानी आयीं, तो चार भुजा का देवता रहे ही नहीं सामने। इस प्रकार की उत्कृष्ट स्थिति गोपांगनाओं की और उससे भी उत्कृष्ट स्थिति राधारानी की और कृष्णचंद परमानंद कन्द और वृन्दावन धाम की। तो वृन्दावन धाम क्या है ? उसी का हम निरूपण करना चाह रहे हैं, पर बहुत देर हो जायेगी इससे आगे यहीं से कल सुनना।

श्री राम जय राम जय जय राम

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो। प्राणियों में सद्भावना हो।

विश्व का कल्याण हो। गौहत्या बन्द हो। गोमाता की जय हो।

हर हर महादेव

(६-४-८१)

परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण की अप्राकृत दिव्य लीलाएँ

'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

भगवान् ने उन रात्रियों का वीक्षण किया। देखा और उन गोपांगनाओं का भी वीक्षण किया, अवलोकन किया और उसके बाद—'ता आहूय ता दृष्ट्वा रन्तुं मनश्चक्रे'—उन सबका आवाहन करके उन के साथ रमण करने की इच्छा की। तो बात यह चल रही थी 'अपि' शब्द है—'भगवान्-अपि' और पहले तो—'आत्मारामाश्च' में भी 'अपि'—'आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे'—'अपि' शब्द कहता है कि यह संगति तो नहीं जो आप्तकाम पूर्णकाम आत्माराम परमनिष्काम हों तो क्यों भजन करें ? किसलिये भजन करें ? बिना प्रयोजन के किसी प्राणी की प्रवृत्ति नहीं होती—'नहि प्रयोजनमनुद्देश्य मन्दोऽपि प्रवर्त्तते'। मन्द प्राणी भी बिना किसी प्रयोजन के प्रवृत्त नहीं होता। प्रयोजन यह हो सकता है—मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम। तो जो सनकादिक शुकादिक योगीन्द्र, मुनीन्द्र, अमलात्मा परमहंस, तत्त्वदर्शी हैं, वह तो मुक्त ही हैं। मोक्ष उनको प्राप्त ही है और धर्म भी मोक्ष ही के लिये होता है। मोक्ष प्राप्त हो तो धर्म की भी अपेक्षा नहीं है। अर्थ काम की। अर्थकाम में तो उनकी प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती। तो बिना प्रयोजन के ही प्रयोजनयुक्त न होने पर भी निर्ग्रन्थ, आत्माराम, महामुनीन्द्र, योगीन्द्र भी भगवान् की भक्ति करते हैं। बल्कि एक दृष्टि देखें—कुन्ती माता कहती हैं कुन्ती—भगवान् की स्तुति करते हुए कुन्ती माता ने कहा—

'विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद् गुरो'।

हे भगवान् ! हम तो आपसे विपत्ति का वरदान मांगते हैं। लोग सम्पत्ति मांगते हैं। साम्राज्य, स्वराज्य, वैराज्य मांगते हैं। कुन्ती माता कहती हैं हमको तो आप विपत्ति का वरदान दो। क्यों ? विपत्ति क्यों चाहती हो ? बोली—सम्पत्ति में हम भूल जाते हैं आपको, वैभव में हम भूल जाते हैं आपको, ऐश्वर्य में हम भूल जाते हैं आपको लेकिन जब विपत्तियों की घनघोर घटायें उमड़ती हैं तो सिवाय आपको छोड़कर कोई दूसरी याद नहीं रहती। इसलिये यह बुद्धिमानों ने कहा कि—

"विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।"

दुनिया की कोई विपत्ति, विपत्ति नहीं है और दुनिया की कोई सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं है। तब क्या विपत्ति ?—'विपदः विस्मरणं विष्णोः' भगवान् को भूल जाना—यही विपत्ति है और 'सम्पद् नारायण स्मृतिः' भगवान् का स्मरण बना रहे यही सम्पत्ति है।

'कह हनुमन्त विपद प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई।'

जब आपका सुमिरन भजन न हो वही विपत्ति है

'विपदोनैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपदः विस्मरणम् विष्णोः सम्पद्, नारायण स्मृतिः।''

भगवान् को भूलना ही विपत्ति है। भगवान् का स्मरण रखना यही सबसे बड़ी सम्पत्ति है। उन कुन्ती माता ने स्तुति करते हुए भगवान् से एक बात कही—

प्रभु आपका आविर्भाव किसलिये होता है ? निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अनन्त, अखण्ड, परात्पर परब्रह्म सगुण—साकार सच्चिदानंद घन परब्रह्म रूप से क्यों प्रगट हुआ ? यह तो भगवान् ने स्पष्ट ही कर रखा है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥'

जब-जब धर्म की ग्लानि होती है अधर्माभ्युत्थान होता है तब अधर्माभ्युत्थान मिटाने के लिये, धर्म संस्थापन के लिए अनन्त ब्रह्माण्ड नायक भगवान् परमात्मा, सगुण, साकार सच्चिदानन्दघन परब्रह्म के रूप में प्रगट होते हैं।

प्रयोजन क्या है—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥'

साधुओं का परित्राण करने के लिए, दुष्टों का दर्प दलन करने के लिये और धर्म की संस्थापना के लिये भगवान् का आविर्भाव होता है। कुन्ती कहती है—यह सब कुछ नहीं, क्योंकि सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान् भगवान् यह सब काम तो संकल्प मात्र से कर सकते हैं। मच्छर को मारने के लिये अणुबम, परमाणुबम, हाइड्रोजन बम का प्रयोग करना बुद्धिमानी नहीं। जब भगवान् के संकल्प मात्र से अनंत ब्रह्माण्ड का संहार हो जाता है और संकल्प किया—अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न होकर फलित प्रफुल्लित होकर तैयार हो गया। एक शांकरभाष्य पर भामती टीका है, वाचस्पति मिश्र की। उन्होंने मंगलाचरण लिखा है।

'निः श्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि।
स्मितमेतस्य चराचरमस्य च सुप्तं महाप्रलयः।'

भगवान् ने श्वास लिया तो अनन्त विद्याओं के उद्गम स्थान मंत्रब्राह्मणात्मक वेद बनकर तैयार हो गये। खाली श्वास लेकर। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

'जाकी सहज स्वास स्रुति चारी।
वह प्रभु पढ़हिं यह अचरज भारी॥'

सहज स्वास से माने ! अकृत्रिम श्वास से परात्पर परब्रह्म प्रभु के श्वास से जो मंत्र-ब्राह्मणात्मक वेद हैं जो अनन्त विद्याओं के उद्गम स्थान हैं—बनकर तैयार हो जाते हैं और भगवान् ने निहार दिया तो अनन्त ब्रह्माण्ड के मूल पंच महाभूत बनकर तैयार हो गये

और जरा-सा भगवान् ने मुस्करा दिया अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड फलित प्रफुल्लित होकर तैयार हो गये और जरासा आँख मींच लिया तो अनन्त ब्रह्माण्ड का बन्टाढार हो गया। देखा। श्वास लेने से वेद बन गये; निहार देने से पंचमहाभूत बन गये। मुस्करा देने से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड फलित प्रफुल्लित होकर तैयार हो गया और नेत्रोन्मीलन करने मात्र से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का संहार हो गया। तो उनको यह रावण आदि जैसे कीटों का संहार करने के लिए सगुण साकार अवतार धारण करने की क्या जरूरत पड़ी ? संकल्प मात्र से सब हो सकता है। सत्य संकल्प भगवान् हैं। संकल्प करदें सम्पूर्ण दुष्ट दानवों का संहार हो जाये। बाल्मीकि रामायण में भगवान् श्री राम ने कहा भी। विभीषण को शरण लेने में सुग्रीव आदि आनाकानी कर रहे थे। अब उनको यह खौफ था कि हम लोगों ने संग्राम छेड़ रखा है और ऐसे भयंकर दुश्मन से और आप इस समय दुश्मन के सगे भाई को अपने यहाँ का अन्तरंग बना रहे हैं कितने खतरे में अपनी राजनीति पड़ सकती है। तब भगवान् राम ने कहा—

"पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरि गणेश्वर॥"

हे हरि गणेश्वर ! जितना अखण्ड भूमण्डल में दानव, दैत्य, पिशाच, गन्धर्व, राक्षस, असुर—इच्छा करूं तो अंगुलि के अग्रभाग से क्षणभर में सबका संहार कर दूं—

'अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरि गणेश्वर'।

तुलसीदास तो कहते हैं—

'जग मंह सखा निशाचर जेते।
लक्ष्मण हनहिं निमिष मंह ते ते।'

तो कहने का सार यह हुआ कि जो संकल्प मात्र से अनन्त ब्रह्माण्ड का संहार कर सकता है, रावण को मारने के लिए हिरण्यकशिपु को मारने के लिए उसे अवतार धारण करने की क्या जरूरत है। धर्म संस्थापन भी उसके संकल्प मात्र से हो जायेगा। कलियुग में जब भगवान् का आविर्भाव होगा तो उनके बनमाला की सुगन्धि से सब में धार्मिक भावना अपने आप जाज्वल्यमान हो जायेगी। तो धर्म संस्थापन भी हो सकता है। साधुओं का परित्राण भी हो सकता है संकल्पमात्र से। भगवान् संकल्प कर दें सब साधुओं का परित्राण हो जाता है। इसके लिये निर्गुण को सगुण बनना; निराकार को साकार बनना इस उपद्रव की क्या जरूरत थी ? इसलिये कुन्ती अपनी तरफ से कहती है कि मेरी दृष्टि में तो आपके आविर्भाव का हेतु क्या है—बोले !

'तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः॥

हमारी दृष्टि में तो अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों को भक्तियोग का विधान करने के लिये आपका आविर्भाव होता है। एक तो होते हैं हंस और एक होते हैं परम हंस। सांख्य बाद के अनुसार जो प्रकृति-पुरुष का विवेक करके और पुरुषात्मा में परिनिष्ठित होता है वह हंस। हंस-पानी और दूध को जो पृथक्-पृथक् कर दे उसका नाम हंस है। प्रकृति और

पुरुष दोनों जो मिले-जुले हो गये हैं। प्रकृति में पुरुष मिल गया है और पुरुष में प्रकृति मिल गयी है। यह प्रकृति और पुरुष का स्पष्ट विश्लेषण करने वाला, सांख्यवादी-हंस होता है। तो परमहंस कौन हैं ? सत्यानृत का विश्लेषण प्रकृति और पुरुष का विवेक हो जाने पर भी प्रकृति बनी रहती है। प्रकृति का विकार बना रहता है और पुरुष भी बना रहता है। दूध का दूध और पानी का पानी अलग-अलग सब हो जाये—यह हंस का काम है। लेकिन परमहंस वह होता है जिसके यहाँ सत्यानृत का विश्लेषण होता है। एक सत्य है एक मिथ्या है। रज्जु सत्य है रज्जु में कल्पित सर्प मिथ्या। शुक्ति सत्य है उसमें कल्पित रजत मिथ्या। मरुमरीचिका सत्य है उसमें परिकल्पित जल मिथ्या। यह जहां सत्यानृत का विश्लेषण है वहां तो सत्य ही रह जाता है अन्य सबका सब बाधित हो जाता है। शुक्ति का साक्षात्कार हुआ, रजत वाधित। रज्जु का साक्षात्कार हुआ सर्प-बाधित।

झूंठहु सत्य जाहि बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहचाने॥

झूठी वस्तु भी सत्य मालूम पड़ती है जिसको जाने बिना जैसे रज्जु में सर्प। रज्जु को पहचाने बिना सर्प प्रतीत होता है—

झूंठहु सत्य जाहि बिनु जाने।

तो जब विवेचन हो जायेगा तो रज्जु रज्जु रह जायेगा सर्प मिट जायेगा। शुक्तिका, शुक्तिका, शुक्तिका रह जायेगी रजत आदि बाधित हो जायेगा। ऐसे एक मात्र अखण्ड, अनन्त, निर्विकार, परात्पर परब्रह्म ही रह जायेगा, सारा प्रपंच बाधित हो जायेगा।

जेहि जाने जग जाइ हिराई।
जागे जथा स्वप्न भ्रम जाई॥

जिनको जान लेने से जग-भ्रम मिट जाता है। यह परमहंस हुए। सांख्यवादी हंस हुआ। वेदान्ती परम हंस हुए—उन परमहंसों को—और कैसे परमहंस—अमलात्मा ? जिनका निर्मल, पवित्र अन्तःकरण-अन्तरात्मा है। कभी-कभी ऐसा होता है वेदान्ती होने पर भी आत्मा-अनात्मा विवेक साक्षात्कार होने पर भी प्रपंच का मिथ्यात्व निर्धारण करने पर भी, माया मोह का प्रपंच खड़ा हो जाता है। अन्तःकरण कुछ गड़बड़ होता है तो अशुद्ध अन्तःकरण होता है। तो ज्ञानी को भी कभी-कभी उपद्रव खड़ा हो जाता है। इसलिये कहा ! अमलात्मा। जो परमहंस हैं और अमलात्मा हैं, निर्मल निष्कलंक अन्तःकरण जिनका है, ऐसे लोगों को दुनिया में राग नहीं होता। 'रागोलिङ्गमबोधस्य'—राग तो अबोध का लिंग है। जिस वृक्ष के कोटर में अग्नि धधक रही हो उसमें नवल कोमल पल्लव की कल्पना कौन कर सकता है ? ऐसे ही जहां राग है वहां ब्रह्मात्म साक्षात्कार की कल्पना नहीं करनी चाहिए ब्रह्मात्म साक्षात्कार सम्पन्न, ब्रह्मविद्वरिष्ठ उन लोगों को भक्ति योग विधान करने के लिए आपका आविर्भाव होता है। बोले ! क्या प्रयोजन ! इसका क्या प्रयोजन ? बोले—परमहंसों को श्री परमहंस बनाना—यह उद्देश्य है। क्या मतलब इसका ? इसका मतलब यह है कि—

'राम प्रेम बिनु सोह न ग्याना।
कर्णधार बिनु जिमि जल जाना॥'

राम प्रेम के बिना ज्ञान की शोभा नहीं है।

भागवत में भी कहते हैं—

'नैष्कर्म्यमप्युच्युत भाववर्जितं।
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्॥'

नैष्कर्म्य-ज्ञान, सर्व कर्मसंन्यास द्वारा सम्पन्न होने वाला जो अद्वैत, अनन्त, अखण्ड परात्पर परब्रह्म का बोध, वह भी भक्ति के बिना, प्रेम के बिना सुशोभित नहीं होता। 'कुतः पुनः शश्वद् भद्रमीश्वर, न चार्पितंकर्मयदप्यकारणम्॥'—फिर भले निष्कामकर्म भी हो अगर भगवान् में न अर्पण किया जाये तो उस कर्म की भी शोभा नहीं। इसलिए—

'सो सब धर्म कर्म जरि जाऊ।
जहं न राम-पद पंकज भाऊ'॥

'जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू—वह भी क्या ज्ञान-अज्ञान है—'जहां न राम प्रेम परिधानू।' इसलिये अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों को भक्ति योग विधान करके उन परमहंसों को श्री परमहंस बनाना—यह आपके आविर्भाव का प्रयोजन है। यह दूसरी तरह से नहीं हो सकता। सत्य संकल्पता क्या करेंगे ? आप सत्य संकल्प हैं। लेकिन नियम है कि भक्ति तो तभी होगी जब उसका कोई भजनीय-तत्व सामने होगा। भजनीय तत्व बिना भक्ति नहीं बनेगी। कर्मकाण्ड का जैसे रूप है द्रव्य देवता। द्रव्य देवता न हो तो कर्मकाण्ड का रूप ही नहीं बनेगा। ऐसे ही भजनीय तत्व न हो तो भक्ति बनेगी ही नहीं।

तो अमलात्मा, परमहंस, महामुनीन्द्रों को भक्ति योग विधान करके श्री परमहंस बनाने के लिए जो भक्तियोग विधान करना है उसमें भजनीयतत्त्व मुख्य चीज है। तो भजनीय क्या हो सकता है उनका ? जगत् तो उनका भजनीय हो नहीं सकता। जगत् तो त्याग चुके। प्रकृति, माया जीव, विश्व-प्रपंच सब कुछ त्याग चुके उनका भजनीय नहीं हो सकता यह। भजनीय कौन ? जो अखण्ड, अनन्त, निर्विकार, परात्पर, परब्रह्म है, वही भजनीय है। तो वह तो है ही। वह तो है ही। लेकिन नहीं। यहाँ निर्गुण-निराकार निर्विकार रूप तो है ही, कोई सगुणसाकार सच्चिदानन्दघन रूप से प्रगट हो वह भजनीय होता है। जैसे कि कल कहा था न। जनकजी ने कहा—

'इनहिं विलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा॥'

रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् के सगुण-साकार सच्चिदानन्दघनरूप को देखकर करके मंगलमय मुखचन्द्र की दिव्य आभा प्रभा को निहार करके, दामिनीद्युति विनिंदक पीताम्बर को निहार करके, अनन्तसौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध्य का रसास्वादन करके, जनक जी का मन विभोर हो गया और निर्गुण-निराकार, निर्विकार ब्रह्म में मन खिंच आया। यही-यही सनकादिक-शुकादिकों का हुआ।

'तस्यारविन्दनयनस्यपदारविन्द किञ्जल्कमिश्र तुलसीमकरन्दरेणुः।
अन्तर्गतः स्व विवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः॥'

सनकादि शुकादि जो महामुनीन्द्र अमलात्मा हैं, उन्होंने अरविन्द नयन, कृष्णचन्द्र, परमानन्दकन्द श्री मन्नारायण परात्पर परब्रह्म विष्णु का पदारविन्द सौगन्ध्यामृतका रसास्वादन किया तो पदारविन्द सौगन्ध्यका दिव्य मकरन्द अन्तःकरण में प्रविष्ट होते ही वह–'अक्षर जुषामपि चित्ततन्वोः जो अक्षर अखण्ड परात्पर परब्रह्म का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाले हैं उनके मन में भी क्षोभ हो गया। अर्थात् उनका मन भी इस सगुण साकार, सच्चिदानन्दघन के दिव्य रूप में आकृष्ट हो गया।

तो इन सब दृष्टियों से यह कहते हैं–उन अमलात्मा, परमहंस, महामुनीन्द्रों को भक्तियोग विधान करने के लिए ही आपका अवतार हो सकता है। और कोई दूसरा उद्देश्य नहीं हो सकता। तो इसी को उस तरफ भी लगा सकते हैं। भगवान् के वचन के अनुसार जैसे अरणिमन्थन करके अग्निहोत्र के लिए अग्नि का प्रादुर्भाव किया जाता है। अरणिमन्थन करके अग्नि का प्रादुर्भाव हो गया अग्निहोत्र के लिए तो उससे भोजन भी बना लो, खिचड़ी भी बना लो जाड़ा भी दूर कर लो। पर मुख्य प्रयोजन तो अरणिमन्थन द्वारा जो अग्नि का प्राकट्य हुआ था अग्निहोत्र, दार्शपौर्णमास्य, ज्योतिष्टोम आदि के लिए–उसके बाद और भी काम हो सकते हैं। वैसे ही अमलात्मा परमहंसों महामुनीन्द्रों को भक्तियोग विधान के लिए आपका आविर्भाव हुआ फिर उससे साधुओं का परित्राण भी हो जाये। दुष्टों का दर्पदलन भी हो जाये। लेकिन कौन साधु ? वह साधु जिनका दूसरी तरह से परित्राण हो ही नहीं जैसे कि हमने कहा–'गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्द दर्शने।' गोपीजनों को भगवान् के दर्शन में अनन्त आनन्द है और उनके वियोग में ?–'क्षण' युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत्'–एक क्षण सौ युग के तुल्य प्रतीत होता है। अब बोलो घड़ी कितनी बड़ी होगी? पहर कितना बड़ा होगा ? जब क्षण सौ युग के तुल्य होगा तो दिन उनका कितने युगों का होगा ?

तो इस तरह से ऐसे जो भक्त हैं जिनके जीवन का एकमात्र आधार सगुण-साकार-सच्चिदानन्दघन परब्रह्म के मधुर मनोहर, मङ्गलमय, मुखचन्द्र का दर्शन करना, पादारविन्द की नखमणिचन्द्रिका का दर्शन करना–यही जिनके जीवन का आधार है; ऐसे साधुओं के परित्राण के लिये आपका आविर्भाव बन सकता है और दुष्कृतियों के विनाश के लिए। कौन दुष्कृति? वह विचित्रजन की दुष्कृति हैं ऐसी दुष्कृतियों जिन्होंने दुष्कृति ही किया है भगवान् के लिए। भगवान् जय विजय-पार्षद-जय विजय। उन्होंने देखा भगवान् के मन में इच्छा है युद्ध करने की युद्ध क्रीड़ा, युद्ध क्रीड़ा की इच्छा भगवान् के मन में हुयी तो जय विजय ने सोचा इनसे कौन युद्ध कर सकता है ? सब देवता दानव, असुर सब तो माया के बच्चे हैं और माया तो भगवान् के आगे खड़ी होने में शरमाती है।

जैसे प्रचण्ड मार्तण्ड मण्डल के सामने तमिस्रा रात्रि होने में शरमाती है। भला सूर्य मण्डल के सामने कभी रात्रि आयी है आज तक ? केवल अयोध्या राम नवमी को पहुंची थी। राम भगवान् का। राम भगवान् का जन्मोत्सव दर्शन करने के लिए किन्तु वहां देखा

तो सूर्य नारायण भी हैं। भ्रम में पहुंच गयी—'तदत् बनीसन्ध्या अनुमानी'—सन्ध्या बन गयीं। रात्रि तो रह नहीं सकती सूर्य भगवान् के सामने। तो माया भगवान् के सामने खड़ी होने में शरमाती है। तो माया के बच्चे असुर, राक्षस, दानव कैसे भगवान् से युद्ध करेंगे। लेकिन भगवान् के मन में युद्ध की चिकीर्षा—युद्ध क्रीड़ा करने की इच्छा। जब विजय ने कहा हम युद्ध करते हैं भगवान् से। हम भगवान् से युद्ध कर सकते हैं। भगवान् की इच्छा को पूर्ण कर सकते हैं। लेकिन इस रूप से कैसे युद्ध करें। हम तो इनके पार्षद हैं।

तो इसलिए असुर बन जायें। तो सनकादिक जा रहे थे भगवान् का दर्शन करने। रुक गये। 'बाबाजी कहां जा रहे हो वहां ?' जय, विजय ने जिस समय सनकादिकों को डाटा। सनकादिकों ने कहा कि 'तुम तो असुर भावना वाले हो। असुर—जाओ—असुर हो जाओ।' इस तरह जान बूझकर उन्होंने ऋषियों का श्राप लिया। ऋषियों का शाप लेकर असुर बन गये। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु और बोले—'अब आ जाओ युद्ध करने'। तो भगवान् वहां गये युद्ध करने। हिरण्याक्ष से युद्ध किया। वह भयंकर गदापात हुआ। भगवान् ने मारा तो हिरण्याक्ष को तो भागवत में लिखा है—'नात्मानंजयिनंमेने'—अपने आपको विजयी नहीं माना भगवान् ने। हिरण्याक्ष को भगवान् ने मार लेने के बाद भी अपने आपको विजयी नहीं समझा, उसके भूरि पराक्रम का अनुस्मरण करते हुए कहते हैं भाई ! क्या है ? किसी तरह मार तो दिया हमने किसी तरह से लेकिन हम विजयी नहीं हो सके। अन्त में हिरण्यकशिपु सामने आया। बोला—'आओ हमारे सामने।' यह ऐसा पीछे पड़ गया जैसे मनुष्य के पीछे मौत जैसे-वैसे विष्णु के पीछे हिरण्यकशिपु। बैकुण्ठ में जाये तो बैकुण्ठ, श्वेत द्वीप में जाये तो श्वेत द्वीप में जहां-जहां भगवान् जाये वहीं-वहीं पहुंच जाये। परेशान हो गये भगवान्। कहा—'क्या करें? कैसे बचें इससे ? तो कहा यह बहिर्मुख है इसके भीतर घुसा जाये। बहिर्मुख प्राणी तो बाहर ढूंढ़ता है, भीतर नहीं। तो भगवान् उसके भीतर प्रविष्ट हो गये। उससे पिण्ड छुड़ाने के लिये। तो इस तरह से जिन लोगों ने। भगवान् की युद्ध क्रीड़ा की पूर्ति के लिये जानबूझकर असुर बने हैं; दुष्कर्म किया है, ऐसे लोगों के उद्धार करने के लिए प्रभु का प्रादुर्भाव है। यह सामान्य, यह सामान्य कीट-पतंगों के वध के लिए नहीं किन्तु जो उनके परमभक्त हैं जो उनकी प्रीति के लिए ही असुर बनकर उनकी युद्धचिकीर्षा को पूरा करने का प्रयास किया था ऐसे भक्तों का उद्धार करने के लिए भगवान् का सगुण साकार रूप हो सकता है। और धर्म कौन ? यही धर्म है। जो कि भक्तिरूप धर्म। भक्तिरूप धर्म के द्वारा अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों को श्री परमहंस पदवी मिलेगी जिससे उनका ज्ञान-विज्ञान सुशोभित होगा, अलंकृत होगा। तो इस दृष्टि से वह आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम, परमनिष्काम भी सनकादिक शुकादिक भगवान् को भजते हैं। प्रयोजन न होने पर भी, आप्तकाम होने पर भी। इत्थंभूत गुणोंहरिः भगवान् का सौन्दर्य ऐसा, माधुर्य ऐसा, सौरस्य-सौगन्ध्य ऐसा लोकोत्तर चमत्कार ऐसा कि महामुनीन्द्रों का भी मन आकृष्ट हो जाता है और कहते हैं कि भाई। 'आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था-अपि। भाई यहाँ 'अपि का क्या अर्थ करोगे अपि का।

अपि माने भी—'भगवानपि'—यहाँ भी अपि शब्द है। तो कहते हैं कि भाई ! भगवान् ने तो आत्मारामों का मन आकृष्ट कर लिया। भगवान् का यह लोकोत्तर चमत्कार है कि जो आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम, परमनिष्काम लोग हैं उनका भी मन भगवान् के अनन्त माधुर्य में आकृष्ट हो गया और गोपांगनाओं की महिमा तो उनसे भी बड़ी कि जिन गोपांगनाओं के अनन्त माधुर्य ने भगवान्-अपि-भगवान् को भी आकृष्ट किया। आखिर जैसे किसी ज्ञान में ज्ञान एक सीमा के भीतर है और भगवान् की कृपा ही से। भगवान् की कृपा से ही ज्ञानी में ज्ञान है। भगवान् में ही इच्छा-भग-अखण्ड—

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥'

सांगोपांग समग्र 'ऐश्वर्य' जिसमें हो उसका नाम भगवान्।
सांगोपांग समग्र 'धर्म' जिसमें हो उसका नाम भगवान्।
सांगोपांग समग्र 'ज्ञान' जिसमें हो उसका नाम भगवान्।
सांगोपांग समग्र 'वैराग्य' जिसमें हो उसका नाम भगवान्।
सांगोपांग समग्र 'यश' जिसमें हो उसका नाम भगवान्।
सांगोपांग समग्र 'श्री' जिसमें हो उसका नाम भगवान्।

वह छह चीजें जिसमें हों उसका नाम है भगवान्। जीव में तो ज्ञान-विज्ञान सीमित, वैराग्य सीमित पर भगवान् का ज्ञान निःसीम, भगवान् का वैराग्य भी निस्सीम। तो भगवान् ने तो सीमित ज्ञान-विज्ञान वाले योगीन्द्र-मुनीन्द्र अमलात्मा परमहंसों का मन खींचा। ऐं-ऐं-सनकादिक, शुकादिक बड़े-बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा परमहंसों का मन खींचा, जिनका ज्ञान विज्ञान सीमित है; लेकिन भगवान् का ज्ञान असीमित। गोपांगनाओं ने तो उनको खींचा जो जिनका अनन्त ज्ञान है। अखण्ड ज्ञान है। अनन्त ऐश्वर्य है। अनन्त वैभव है उन सर्वान्तरात्मा सर्वशक्तिमान् अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान् का भी मन गोपांगनाओं ने आकृष्ट कर लिया। तो इसलिये भगवान् से भी ज्यादा चमत्कार-भगवान् ने तो योगीन्द्र, मुनीन्द्र, अमलात्मा, परमहंसों के मन को आकृष्ट कर लिया पर गोपांगनाओं ने तो जिनका अनन्तज्ञान अनन्त वैभव, अनन्त ऐश्वर्य, पूर्ण वैराग्य जिनका है ऐसे सर्वेश्वर सर्व शक्तिमान् भगवान् का भी मन आकृष्ट कर लिया इसलिये-'भगवानपि ता रात्रीः—'ता रात्रीः से उन रात्रियों का—कौन रात्रियां ? जिनको वरदान के रूप में भगवान् ने दिया था। इस प्रसंग में चीरहरण की बात आ जाती है चीरहरण। गोप कन्याओं ने श्रीकृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द मदन मोहन को प्राप्त करने के लिए कात्यायिनी भगवती की अर्चना किया। मार्गशीर्ष के दिन ठण्डी खूब पड़ रही थी जमुना में जाकर स्नान करना और वहीं सिकतामयी गौरी की मूर्ति बनाकरके मंगलागौरी की पूजा करती थीं।

'कात्यायिनी महामाये महायोगिन्यधीश्वरी'

कात्यायिनी भगवती की स्तुति करती थीं, प्रार्थना करती थीं और वरदान मांगती थी कि श्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन, मदन मोहन कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द हमारे दूल्हा बन जायें। हमको यह ही पति मिल जाये 'ऐं'–

'नन्दगोप सुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः'

नन्दगोप-नन्दगोप कुमार, नन्दनन्दन, ब्रजेन्द्रनन्दन, श्यामसुन्दर हमको दूल्हा के रूप में वर मिल जाये। यही वरदान फिर वहां उनका व्रत-पूर्ति करने के लिए भगवान् वहां गये, पधारे। तो आजकल इन सब कथाओं को बड़े-बड़े विकृत रूप में लोग उपस्थित करते हैं चित्र भी ऐसे बड़े बेढंगे तौर पर दिखलाये जाते हैं किन्तु वस्तुस्थिति ऐसे नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि श्रीकृष्ण तो अनन्त ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा हैं, सबकी अन्तरात्मा हैं, गोप कन्याओं की भी अन्तरात्मा हैं। एक 'न्याय मुक्तावलि' है–विश्वनाथ पंचानन भट्ट उसके रचयिता हैं। वह कहते हैं–

'नूतन जलधर रुचये गोपबधूटी दुकूल चौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः संसार महीरुहस्य वीजाय॥'

कहते हैं। जो भगवान् कृष्ण नूतन जलधर रुचये हैं, जिनके नये-नये काले-काले बादलों के तुल्य जिनके मंगलमय अंग की दिव्य दीप्ति। 'नील नीलधर'–सुना है–

'नील सरोरुह नीलमणि नील नीलधर श्याम'

नील सरोरुह के तुल्य जिनके मंगलमय अंग की आभा प्रभा 'नील मणि'–महेन्द्र नीलमणि के तुल्य जिनके मंगलमय अंग की दिव्य आभा, प्रभा कान्ति और नील नीलधर, नीले-नीले बादलों के तुल्य जिनके मंगलमय अंग-प्रत्यंग की दिव्य, आभा-प्रभा, कान्ति है। तो 'नूतनजलधर रुचये'–नूतन जलधर के तुल्य जिनके मंगलमय अंग की रुचि हो। कौन भगवान् ? बोले–'गोप बघूटी-दुकूल चौराय'–गोपबधूटियों के वस्त्र को चुराने वाले। गोपबधूटियों के वस्त्र को चुराने वाले–'तस्मै कृष्णाय नमः'–उन कृष्ण भगवान् को प्रणाम है। कौन कृष्ण ?–'संसारमहीरुहस्य बीजाय'–संसार रूपी वृक्ष का जो बीज है। संसार रूपी वृक्ष का बीज श्रीकृष्ण। जितना भी संसार है–चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, भूधर, सागर, गगन, पर्वत, अनन्तानंत-प्रपंच, इस सबका जो बीज है, वह परमात्मा, गोपबधूटियों का दुकूल चुराने वाला। क्या इसका मतलब ? तो आध्यात्मिक अर्थ है। 'गोपा जीवाः'–गोप माने? 'जीव', 'गाय', 'इन्द्रियां'–'गा इन्द्रियाणि पानू तीति गोपा जीवाः' गो माने इन्द्रियां। गो माने इन्द्रियां। देह-इन्द्रिय अधिपति का नाम जीव। अनन्त कोटिब्रह्माण्डाधिपति का नाम परमेश्वर है और देहेन्द्रियाधिपति का नाम जीव है। गा इन्द्रियाणि पान्तीति गोपा'। तो 'गोपानांबधूटयः–गोपाओं की वधूटियें, बहुयें। जीव की वधूटियें कौन हैं ? 'बुद्धि'। जीव की बहुएं बुद्धि। बुद्धि का जो, दुकूल है, माने बुद्धिका पर्दा। अर्थात् अज्ञान। बुद्धि का पर्दा है अज्ञान। इस अज्ञान को चुराने वाले। 'गोप वधूटीदुकूल चौराय'–'ऐं–'गोपा जीवाः'। जीवों की जो बधूटियां हैं–बुद्धियां, उनका जो दुकूल-पर्दा, उस पर्दा को चुरा लेने वाले-ऐं–इसलिये कहते हैं।

दासोऽहिमितिजाबुद्धिः पूर्वमासीज्जनार्दने ।

एक भक्त कहता है कि हमारी बुद्धि की 'दासोऽहम्'—'दासोऽहम्' अनन्त ब्रह्माण्डनायक परमात्मा श्रीकृष्ण के हम दास हैं। बोले !

'दाकारोऽपहृतस्त्वेनः गोपी वस्त्रापहारिणा'।

गोपियों के वस्त्र चुराने वाले श्रीकृष्ण परमात्मा ने मेरे 'दा' को चुरा लिया 'दा' को। दा को चुरा लिया तब क्या हो गया ?

'सोहं'। 'दा' गया तो 'सोहं'।

'दासोऽहमितिजा बुद्धिः पूर्वमासीदूजनार्दने। 'दाकारोऽपहृतस्त्वेनः'

ऐसे-ऐसे अनेक अर्थ हैं। वस्तुतः मूल बात यह है कि गोप कन्यायें, बालिकायें आठ-आठ वर्ष की सात-सात वर्ष की गोप कन्यायें वह स्वाभाविक इसमें कोई—दूसरी दुर्भावना का प्रश्न नहीं। बलिकाएँ आज भी कात्यायिनी का व्रत करती हैं। मङ्गला गौरी का व्रत करती है और अच्छा घर वर मिले, अच्छा अच्छा दूल्हा हो—इसकी कामना बच्चों को भी होती है, होनी चाहिए, कोई खराबबात नहीं। उसके लिए कात्यायिनीका, अनन्त ब्रह्माण्ड जननी पराम्बा की पूजा करनी स्वाभाविक बात है। इसी बुद्धि से वह पूजा कर रही थीं। पूजा करते-करते भगवान् सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान् प्रभु श्रीकृष्ण पहुंच गये। कृष्ण पहुंच गये तो गड़बड़ हो रही थी। तो ! पूजा में थोड़ी गड़बड़ी हो गयी वह नग्न होकरके स्नान कर रही थी। यमुना जल में नग्न होकरके स्नान कर रही थीं। यह वरुण देवता का अपमान है। वरुण देवता का अपमान है। पूजा में व्यङ्गता हो जाती है, पूजा में न्यूनतम, त्रुटि हो जाती है। उसी त्रुटि को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने कहा देखा ! तुम्हारा यह वस्त्र तो हमारे पास है, वस्त्र ले सकती हो। पर तुम आकर प्रणाम करो। प्रणाम करो हाथ जोड़कर प्रणाम करो। किसलिये ? 'अघनुत्तये'। यह जो तुमने देवता का अपमान किया है। नग्न होकर जल में स्नान किया है। यह जो तुम्हारी पूजा में न्यूनतम, त्रुटि रह गयी है, इस त्रुटि को दूर करने का उपाय यही है कि निश्छल भाव से भगवान् सर्वान्तरात्मा सर्वेश्वर को प्रणाम करो।

बात सीधी है। तुम यह सोचती हो कि श्रीकृष्ण हमारा अङ्ग देखेंगे। तो एक बात सोचो यमुना जल का पानी तुम्हारे अङ्गों को छूता है कि नहीं ? और वायु तुम्हारे अङ्गों का स्पर्श करता है कि नहीं ? बोली हां। तो कृष्ण कौन है ? तो ! एक मूल प्रश्न है कि हमारा आपका देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार भौतिक है और भगवान् कौन हैं ? वह अभौतिक हैं। अगर जैसे हम हों और वैसे ही भगवान् हों तो उनकी आराधना करने से कोई फायदा नहीं। हाड़-मांस-चाम के पुतले हम भी, हाड़-मांस-चाम के पुतले भगवान् भी। इसलिए क्या फायदा भगवान् की आराधना करने से। इसलिए जानलो अच्छी तरह से निश्चय कर लो कि भगवान् भौतिक नहीं हैं। हमारा देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार भौतिक हैं। पाञ्चभौतिक हैं। मायिक हैं, जड़ हैं। और भगवान् ? अखण्ड, अनन्त, निर्विकार, निराकार, सच्चिदानन्दघन परमात्मा परब्रह्म है। उनका हस्तारविन्द, पादारविन्द, वदनारविन्द सबका सब ब्रह्म।

भगवान् शंकराचार्य दार्शनिकों में जिनका लोहा सारा संसार मानता है वह गीता भाष्य में लिखते हैं—

नारायणः परोऽव्यक्ताद्अण्डमव्यक्तसम्भवम् ।
अण्डस्यान्तइमे लोकाः सप्तद्वीपासमेदिनी॥
सः नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावो भगवान् वसुदेवात् देवक्याम्
जातक इव भक्तानामनुग्रहं कुर्वन्निव च लक्ष्यते'॥

भगवान् नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, परात्पर, परब्रह्मस्वरूप हैं। वही भक्तों के अनुग्रह के लिए, वसुदेव से देवकी में उत्पन्न हुए से प्रतीत हुए। निराकार, निर्विकार ब्रह्म कहीं पैदा होता है जो अजर, अमर, अनन्त, अखण्ड, अदृश्य, अग्राह्य, परात्पर परब्रह्म कहीं पैदा होता है ? नहीं। वह तो अवतारवाद के प्रसङ्ग में तो देवकी में भगवान् भी 'आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः' आनकदुन्दुभिः जो वासुदेव हैं उनके मन में भगवान् प्रवेश हुए, शरीर में नहीं, मन में प्रवेश हुए। तो मन में तो ब्रह्म का प्राकट्य होता ही है। अगर हम आप भी जो भी ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहेंगे तो क्या होगा। वह अजर, अमर, अनन्त, अखण्ड, अग्राह्य, अदृश्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य मन में आयेगा। तभी तो उसका मन में साक्षात्कार होता है। तो इसलिए भगवान् अवतार ग्रहण करने के लिए वसुदेव के मन में आविर्भूत हुए और देवकी वसुदेव के मन से 'मनस्तः'—वहां भी यही शब्द है। देवकी के मन ने वसुदेव के मन से उस साक्षात् परात्पर परब्रह्म को अपने मन में धारण किया। अर्थात् परब्रह्मदेव स्वयं वसुदेव के मन में प्रगट हुए और वसुदेव के मन से ही देवकी के मन में आविर्भूत हो गये और वहां से वहीं परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण के रूप में प्रगट हो गये। कृष्ण का रूप भी व्यापक है। निराकार निर्विकार रूप तो व्यापक है ही है पर सगुण-साकार रूप भी व्यापक है। आपको मालूम है उत्तरा, परीक्षित की माता अभिमन्यु की पत्नी 'उत्तरा'; उसके पेट में बच्चा था राजा परीक्षित तो अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया, ब्रह्मास्त्र। राजा परीक्षित ने स्वयं याद किया कि—

'द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं संतानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥

स्वयं राजा परीक्षित ने कहा कि मेरी अम्मा उत्तरा भगवान् श्रीकृष्ण की शरण गयीं क्योंकि अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र ने उत्तरा के गर्भ में रहने वाले परीक्षित को नष्ट किया—'द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं'—और कहा कि हमारा जो अङ्ग है वह द्रौणी के अस्त्र से विप्लुप्त हो गया। द्रौणी जो अश्वत्थामा है उसके ब्रह्मास्त्र से मेरा अङ्ग तो भस्म हो गया। तो मेरी मां भगवान् की शरण गयीं। भगवान् की शरण गयीं। भगवान् की शरणागति कभी विफल नहीं जाती। तो भगवान् मेरी मां के पेट में प्रगट हो गये—'कुक्षिं गत आत्तचक्रः—चक्र धारण किए हुए भगवान् मेरी मां के पेट में प्रविष्ट होकर मेरी रक्षा किए। अमृतवर्षिणी अपनी कृपा दृष्टि से मुझे पुनरुज्जीवित कर दिया। ब्रह्मास्त्र से परीक्षित राजा का शरीर भस्म हो

चुका था परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की अमृतवर्षिणी कृपा दृष्टि से फिर जीवित हो गया। चक्र के द्वारा भगवान् ने ब्रह्म के तेज को विघूर्णन कर डाला। यहीं उन्होंने कहा—

'द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम्।
जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥

शरणागत हुई हमारी मां के पेट में प्रविष्ट होकर भगवान् ने मेरी रक्षा की। अमृतवर्षिणी कृपा दृष्टि से मुझे जिलाया। तो वहां भगवान् कहीं बाहर से गये ? उसके पेट में कहीं बाहर से गये ? अरे भई ! हमने कहा कि—आकाश का भी पिता, पितामह प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह, अनन्त-ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण पहले से ही सर्वत्र विराजमान हैं—प्रगट हो गये। केवल प्रगट होने की देरी है। शरणागति में देरी है। शरणागति होते ही प्रगट हो गये।

तो कहने का सार यह है कि वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् परमात्मा अपनी अचिन्त्य, अनन्त दिव्य लीलाशक्ति से जीवों का कल्याण करने के लिए अनेक रूप धारण कर लेता है। तो उनको पाने के लिए भगवान् का शरीर क्या है ? मत भूलो ! अभौतिक, अमायिक। हमारा शरीर भौतिक मायिक। भगवान् का शरीर अभौतिक, अमायिक। तो बोलो भाई ! मायिक देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार से हम अमायिक परब्रह्म को कैसे पायेंगे ? शास्त्र कहता है—

'देवो भूत्वा देवान् यजेत्'—देव बनकर देवता की पूजा करो। जब तक स्वयं देव न बन जाओगे तब तक देवता की पूजा के अधिकारी नहीं हो सकते इसलिए तान्त्रिकों में भूशुद्धि की जाती है। भूत शुद्धि की जाती है। सारे प्रपंच का प्रविलापन करके दिव्य देह का निर्माण होता है। निर्माणकाय की पद्धति सिद्धों में, सन्तों में योगियों में, तान्त्रिकों में प्रसिद्ध है। निर्माणकाय, दिव्यकाय का निर्माण कि जिस पर वज्र का प्रहार भी अकिंचित्कर हो जाये। ऐसी दिव्य देह। देवता बनकर देवता की पूजा करो। 'नादेवो देवमर्चयेत्'। अदेव देवता की पूजा नहीं कर सकता।

जब तक देव नहीं बनते, तब तक देवता की पूजा के अधिकारी नहीं। देवता की पूजा करने के लिए देवता बनो। हम भौतिक देह भौतिक। हमारी इन्द्रियां भौतिक, आँखें भौतिक, कान भौतिक, हाथ-पैर भौतिक, इस भौतिक देह से अभौतिक वस्तु को कैसे छुयेंगे ?

एक दृष्टान्त ले लो—आँख से ही रूप का ज्ञान क्यों होता है ? कान से रूप का ज्ञान क्यों नहीं होता ? इसलिए कि आँख का और रूप का साजात्य है। एक ही जाति के हैं। नेत्र जो हैं तैजस हैं। नेत्र किससे बनता है ? तेज से बनता है। तेज का इन्द्रिय नेत्र है और रूप क्या है ? वह भी तेज का गुण है। नेत्र और रूप में तैजस-तैजस होने के कारण साजात्य है। इसलिए नेत्र के द्वारा रूप का ज्ञान होता है; गन्ध का ज्ञान क्यों नहीं होता ? गन्ध पार्थिव और घ्राण पार्थिव। पार्थिव घ्राण से पार्थिव गन्ध का ज्ञान हो सकता है, पर तैजस नेत्र से पार्थिव गन्ध का बोध नहीं होगा। माने ? ग्राह्य-ग्राहक भाव सजातीय में होता है। विजातीय में नहीं होता सजातीय में होता है। आँख व रूप सजातीय हैं इसलिये नेत्र को रूप का ज्ञान होता है। घ्राण और गन्ध सजातीय हैं इसलिए घ्राण से गन्ध का बोध होता है। श्रोत्र और शब्द सजातीय हैं। श्रोत्र आकाश का इन्द्रिय है और शब्द आकाश का गुण है इसलिए श्रोत्र

से शब्द का ग्रहण होता है। माने ? विजातीय में ग्राह्य-ग्राहक भाव नहीं होता।

भगवान् अमायिक है, अभौतिक है और देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि हमारा भौतिक है, मायिक है। इस मायिक, भौतिक देहादि से इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि से, अभौतिक परात्पर परब्रह्म को हम कैसे जानें ? इसलिए हर एक उपासना के अनुसार, यहाँ तक कि जिस दिन माला पकड़ा, भजन करने के लिए पकड़ा, उसी दिन से आपके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदि की भौतिकता मिटने लगती है। इसमें अभौतिकता, अमायिकता आने लगती है। बाकी फिर तो विधियां तो ये हैं कि पहले मूलाधार में चतुर्दल कमल में दिव्य जो कर्णिका; कर्णिका में त्रिकोण में एक बिन्दु, बिन्दु ज्योतिर्लिङ्ग है। उसी ज्योतिर्लिङ्ग को परमेष्टित करके फिर कुण्डलिनी शक्ति, यह कुण्डलिनी शक्ति हठयोग के आधार पर भी तान्त्रिक उपासना के आधार पर भी बीजबल से प्राणायाम के बल से मूलबन्ध और जालन्धरमुद्रा का अभ्यास करने के बल पर वह कुण्डलिनी शक्ति उठती है और उसका ध्यान। लिखा है—

'आमूलाधारादाब्रह्मबिलं विलसन्तवं तडिल्लतासदृशाकृतिं।
तरुणारुणपिञ्जरां तैजसीं ज्वलन्तीं कुण्डलिरूपां॥
सर्वाधिष्ठान भूतां परां संविदम् भावयेत्।'

यह सब तान्त्रिक उपासनाओं में आता है। मूलाधार को लेकर ब्रह्म रन्ध पर्यन्त तेजोमयी, प्रकाशमयी, दिव्य कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान करना चाहिए। यूं लिखा है—

'तद्रश्मिनिकरभस्मितसकलकल्मषजालम्

उसके 'रश्मिनिकर' से ही जन्मजन्मान्तर कल्पकल्पान्तर के पाप पुंज खत्म हो जाते हैं, कुण्डलिनी का ध्यान करने से, तेजोमयी, प्रकाशमयी, सर्पिणी के तुल्य, कुण्डलिनी का ध्यान करने से। जैसे मन्दिर में शिव के लिङ्ग को लपेट करके सांप स्थित होता है, ऐसे ही ज्योतिर्लिङ्ग जो है त्रिकोण में उसको परमेष्ठित करके कुण्डलिनी शक्ति स्थित है; उसका जब ध्यान करते हैं: उत्थापन की कल्पना करते हैं। तो मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जगमगाती हुयी कुण्डलिनी और उसके 'रश्मिनिकर' मात्र से जन्मजन्मान्तरों के पाप तक तत्क्षण कट जाते हैं। फिर उसके बाद ध्यान किया जाता है। और यं यं यं यं से प्राणायाम् करके पाप पुरुष का शोधन किया जाता है। और रं रं रं रं अग्नि बीज से कुम्भक प्राणायाम करने में पाप पुरुष का भस्मीकरण किया जाता है। पाप पुरुष को उसमें भस्म किया जाता है फिर यं यं यं इस वायु बीज से रेचक के द्वारा उस भस्म को बहिर्निष्कासन किया जाता है। अघमर्षण-सन्ध्यावन्दन करने वाले लोग जानते हैं। अघमर्षण का जो मन्त्र है उसमें भी यही होता है कि पाप पुरुष को बहिर्निष्कासन करके पाषाण पुरुष को पटकते हैं। ध्यान करके हाथ में जल लेकर मन्त्र पढ़ते हुए।

मन्त्र के प्रभाव से वह पाप पुरुष दग्ध हो करके वाम नासिका द्वारा बहिर्भूत हो जाता है। फिर उसके बाद लं वं रं यं हं—यह पांच बीजों का आवर्तन करने से लय किया जाता है संसार का। प्रलय—जैसे महाप्रलय का वर्णन एकादश स्कन्ध में है उसी को याद कर लो। सारा पार्थिव-प्रपंच पृथिवी में लीन हो गया; पृथिवी जल में लीन हो गयी, जल तेज में लीन हो गया; तेज वायु में लीन हो गया, वायु अनन्त आकाश में लीन हो गया, आकाश अनन्त

अहं में लीन हो गया, अहं महान् (महत्तत्व) में लीन हो गया; महान् अव्यक्त-निद्रा में लीन हो गया; वह अव्यक्त अनन्त स्वप्रकाश सत् में प्रविलीन हो गया—ये भावना उपासना की है। फिर उसके बाद वं वं वं इस अमृत बीज से प्राणायाम करके फिर इसी क्रम से उत्पत्ति उस अनन्त सत्ता में अव्यक्त हुआ, अव्यक्त से महान् उत्पन्न हुआ; महान् (महत्तत्व) से अहं (अहंत्तत्व) उत्पन्न हुआ; अहं से महापंचभूत उत्पन्न हुए; उससे उपासना के योग्य दिव्यदेह का निर्माण, दिव्यदेह का निर्माण करके फिर कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मरन्ध्र से जीव को लाकर के हृदय में स्थापित करती है और जाकर मूलाधार में फिर स्थित हो जाती है। उसके बाद से फिर अपना मन्त्रों का जाप करो, ध्यान करो। और सामान्यार्घ्य द्वारा और विशेषार्घ्य द्वारा इनके सब दोषों को दूर करो। अन्ततोगत्वा इतने संस्कार है—सोलह संस्कार स्मार्त और अड़तालीस संस्कार श्रौत हैं। श्रौतस्मार्त अड़तालीस संस्कार। ये सब करते यही हैं कि जीव की भौतिकता मिटाते हैं और अभौतिकता लाने की कोशिश करते हैं। मनु कहते हैं—'महायज्ञैश्व यज्ञैश्च ब्रह्मीयं क्रियते तनुः' यज्ञों के द्वारा, महायज्ञों के द्वारा देह भगवत्प्राप्ति योग्य बनती है। माने देवत्व आता है। अदेवत्व मिटता है। यह सब उपासनाकी रीति है। क ख ग घ उपासना का। इस आधार पर प्राणायाम करके, ध्यान करके, दिव्य देह निर्माण करके, न्यास, ध्यान आदिकी के द्वारा उसको प्रविष्ट करके, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि अहंकार की भौतिकता को मिटाया जाता है। अभौतिकता उनमें लायी जाती है अमायिका उनमें पायी जाती है।

तो कात्यायिनी अर्चनाव्रत कथा है। गोप कन्याओं का जो लौकिक शरीर था। पहले तो सामान्य गोपकन्या नहीं थीं। हमने बता दिया कि अपराप्रकृति गोपकन्या बनीं; पराप्रकृति जीव गोपकन्या बनीं; अनन्त-अनन्त शक्तियां गोपकन्या बनी हैं; मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदों की अधिष्ठात्री महा शक्तियां गोपकन्या बनी हैं; यमकपुरी की दिव्यांगनाएं गोपकन्या बनी हैं; और बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र, अमलात्मा, परमहंस गोप कन्याएं बनीं क्योंकि—हमने कहा कि गोपांगना भाव बिना परब्रह्म की प्राप्ति होती ही नहीं। गोपांगना भाव की व्याख्या भी कर दिया है कि भगवान् की काया की छाया बन जाना। भगवान् की इच्छा में इच्छा मिला देना, भगवान् के मन में मन मिला देना। बिम्ब की स्थिति, गति, प्रवृत्ति के पराधीन प्रतिबिम्ब की स्थिति, गति, प्रवृत्ति के पराधीन तरंग की स्थिति, गति, प्रवृत्ति। इस आधार पर जब जीव अपने आपको अपने अन्तःकरण अन्तरात्मा को प्रभु की इच्छा पर छोड़ देता है तो उसकी लौकिकता, भौतिकता, मायिकता मिटने लगती है और उसमें दिव्यता, अलौकिकता, रसात्मकता, अप्राकृतता, ब्रह्मरूपता आने लगती है।

तो दण्डकारण्य के निवासी ऋषि-मुनि लोग भगवान् श्री रामचन्द्र का दर्शन कर चुके हैं। कितनी भू-शुद्धि, भूत-शुद्धि किया होगा उन लोगों ने ? कितना कुण्डलिनी का ध्यान किया होगा ? कितना उनके जन्म-जन्मान्तर के पाप सब खत्म हुए होंगे ? तब तो राम का दर्शन हुआ। तो राम से वरदान पा करके गोपकन्या बने। माने अभी कुछ भौतिकता बाकी है; अभी कुछ मायिकता बाकी है। पूर्ण भौतिकता मिट जाए, पूर्ण मायिकता मिट जाए; पूर्ण अलौकिकता-अमायिकता आ जाय। तब कृष्ण स्पर्श का अधिकार मिले।

अब आजाईये प्रसंग पर–

वे गोप कन्याएं, कृष्ण दर्शन की लालसा से, कृष्ण को दूल्हा के रूप में प्राप्त करने की लालसा से कात्यायिनी–अर्चनम् व्रत कर रही थीं। तप के द्वारा उनके देह की भौतिकता, मायिकता, प्राकृतता मिट रही थी। अप्राकृतता, रसात्मकता, दिव्यता आ रही थी। जरा जल्दी करने के लिए भगवान् ने उनके कपड़ों को उनके वस्त्रों को चुपचाप भगवान् ने ले लिया। वह तो नहा रही थीं और वस्त्र लेकर के किसी कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये। यह तो लीला हुई, किन्तु वास्तव में उनके वस्त्रों को छूना था। क्यों छूना था ? आजाईये विचार पर, मुख्य विचार पर। तब यह जान लीजिये कि सारा जगत् ही ब्रह्म है–एक बात ! और एक दूसरी दृष्टि में भगवान् श्री कृष्ण का अपनी लीला और उनके परिकर और उनका धाम–यह सब तो विशिष्ट रूप से ब्रह्मात्मक है। श्री वल्लभाचार्य अपने ग्रन्थों में लिखते हैं कि दो प्रकार की सृष्टि होती है। एक तो लोकार्थ सृष्टि और एक आत्मार्थसृष्टि। एक तो संसार के कल्याण के लिए भगवान् की सृष्टि होती है और एक अपनी लीला के लिए भगवान् की सृष्टि होती है।

'स्वात्मानं स्वयमेव अकुर्वत'–यह विषय अलग है। भगवान् ने अपने आप को सृष्टि के रूप में प्रगट किया। कौन-सी सृष्टि ? वृन्दावनधाम की सृष्टि। गोपांगनाओं की सृष्टि, गोपबालकों की सृष्टि। वहां के बछड़ों की सृष्टि। वहां की गायों की सृष्टि–यह सब भगवद् लीला के अन्तर्गत् जो तत्त्व आते हैं–इनकी सृष्टि भगवान् ने पृथक् किया। यह दिव्य, स्वभाव से दिव्य हैं। ऊपर से तो आप देखेंगे कि जैसे यहाँ काँटा वैसे वहाँ काँटा। जैसे यहाँ रूखापन वैसे वहाँ रूखापन। यहाँ बीमारी होती है वैसे ही वहां भी बीमारी होती है। यहाँ का सूरज वैसे वहाँ का सूरज। पर बात तो और है जैसे कृष्ण सामान्यतः प्रतीत होते हैं। जैसे और बालक वैसे कृष्ण। लेकिन और बालक जैसे कृष्ण नहीं थे।

'बबन्ध प्राकृतंयथा'–नन्दरानी ने अपने मदनमोहन श्यामसुन्दर को बांध दिया ऐसे जैसे कि कोई माता–लौकिक माता अपने प्रकृत, लौकिक बालक को बांध देती है। तो दृष्टांत दिया–'बबन्ध-प्राकृतं यथा'–जैसे प्राकृत बालक को माता बांध देती है, ऐसे माता नन्दरानी ने नन्दनन्दन, ब्रजेन्द्रनन्दन, मदनमोहन को बांध दिया। मतलब यह है कि सर्वसाधारण की दृष्टि से मालूम पड़ते थे, कि जैसे और बालक हैं वैसे कृष्ण भी है यहाँ तक कि नन्दरानी भी कई बार भूलती थीं वह तो एक दिन का तमाशा ऐसा हुआ। ग्वालबालों ने जाकर कहा कि मयूया ! तेरे लाला ने मिट्टी खायी। अब नन्दरानी छड़ी लेकर आई। बोलीं! क्यों लाल ? डर गए। डर गए कृष्ण। कुन्ती कहती है कि डर, जिससे डरता है। डर जिससे डरता है वह माँ से डर गया ?

''गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद् या ते दशाश्रुकलिलाञ्जन संभ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपियद्बिभेति॥''

कुन्ती कहती है कि हे प्रभु जिस समय आपने कुछ गड़बड़ किया। माँ रस्सी लेकर बांधने को आयी। आप भयभीत हो गये। आपके आँखों से आँसू निकलकर कपोलों पर ऐसे चमक रहे हैं जैसे कमल के कोष में ओस के कण सुहावने लगते हैं। ऐसे प्रभु के नयनों

से आँसू कपोलों पर चमक रहे हैं। कुन्ती कहती है कि भय भी जिससे डरता है, जो काल का काल, जो महाकाल भी महामृत्युञ्जय है। गोस्वामी जी कहते हैं–

'गूलर तरु समान तब माया।
लागे फल ब्रह्माण्ड निकाया॥
तेहिफल भक्षक काल कराला।
तब डर डरत रहत सो काला॥'

आपकी माया गूलर की तरु उसमें अनन्त-अनन्त फल लगे हैं। माने ! अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड लगे हैं। माया रूपी गूलर के वृक्ष में तन से लेकर पल्लव तक चारों तरफ फल ही फल ब्रह्माण्ड ही ब्रह्माण्ड। उनको खाता कौन है ? विकराल काल। जो गूलर का फल पक गया, काल ने खा लिया तो 'तब डर डरत रहत सो काला'। ब्रह्माण्ड रूपी फलों के भक्षण करने वाला काल भी आपके डर से डरता रहता है। तो 'भीरपियद्विभेति'–भय भी जिससे डरता रहता है वह आप माँ से भयभीत हो गये। और डर कर बोले 'नाहं भक्षितवानम्ब' माँ मिट्टी नहीं खायी। झूठ ! सफेद झूठ !! मिट्टी खायी और कह दिया–"नाहं भक्षितवानम्ब'।

वेदान्ती और भक्त का शास्त्रार्थ है। वेदान्त कहती है कि भगवान् ठीक बोले रहे है–'नाहं भक्षितवानम्ब'। आत्मा, अकर्त्ता, अभोक्ता, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है। और कृष्ण ठीक कहते हैं कि 'नाहं भक्षितवानम्ब'। भक्त कहता है कि नहीं! नहीं!! भगवान् ने मिट्टी तो खायी थी पर, पर अम्मा से डर कर झूठ बोल रहे हैं कि 'माँ मैंने मिट्टी नहीं खाई'। माँ कहती हैं कि तेरे संगी साथी, साथी, ग्वाल-बाल कहते हैं कि तूने मिट्टी खायी। तो कहते हैं कि माँ 'सर्वे मिथ्याभिशंसिनः'–सब झूठ बोलते हैं। यह सब हमको पिटवाना चाहते हैं; मैंने मिट्टी नहीं खायी। यह सब झूठ बोलते हैं। बोली ! 'तेरा अग्रज दाऊ भय्या भी कहता है कि तूने मिट्टी खायी'। कहते हैं–'माँ सब झूठ बोलते हैं'। एक झूठ को सत्य बनाने के लिये सौ झूठ बोलना पड़ता है और भगवान् धृष्टता करते हैं कि 'माँ तू विश्वास नहीं करती तो मेरा मुख देख, मेरा मुख देख ले।' यहाँ भगवान् का उद्देश्य यही था कि माँ विश्वास कर लेगी। अगर लाला ने मिट्टी खायी होती तो मुख दिखाने को क्यों तय्यार होता ? इसलिये भी पूरा विश्वास कर लेगी कि हां, हां मिट्टी नहीं खायी लाला ने यह ग्वाल-बाल ऐसे ही कहते हैं। लेकिन माँ ने कह दिया था–कि 'इत्युक्तः तर्हि व्यादेही'–खोल मुख देखूं। अब यह कल्पना नहीं थी श्री कृष्ण को, कि माँ यह कह देगी। पर माँ ने कह दिया। तब अब खोला भगवान् ने मुख ? बोले खोला तो नहीं। फिर क्या हुआ ? बोले–मातृकोप रवि रश्मि से मुख कमल खिल गया। आपका मुख कमल। सूर्य की रश्मि से कमल प्रफुल्लित हो जाता है; ऐसे ही कोप रूपी सूर्य की रश्मि से आपका मुखकमल खिल गया। खोलना नहीं चाहते थे, खोला नहीं, क्योंकि मुख में तो मिट्टी थी। मुख में तो मिट्टी थी खोलते कैसे ? किन्तु मातृकोप रवि रश्मि से मुख कमल खिल गया। अब! भगवान् की माया एक, पीछे-पीछे रहती है; यद्यपि ब्रजलीला में माधुर्याधिष्ठात्री महाशक्ति का साम्राज्य है। ऐश्वर्याधिष्ठात्री महाशक्ति का उतना सम्मान नहीं है, तो भी वह पीछे-पीछे रहती है इस बात की प्रतीक्षा में कि कभी हमको सेवा का अवसर मिल जाय तो हम सेवा करें। तो ऐश्वर्याधिष्ठात्री महा शक्ति पीछे-पीछे

थी उसने सब देखा यह तमाशा कि प्रभु ने मिट्टी खायी है; ग्वाल बालों ने जाकर शिकायत कर दिया है, माँ छड़ी लेकर आयी। प्रभु डर गये; झूठ बोला माँ मैंने मिट्टी नहीं खायी; उसने कहा ग्वाल-बाल सब कहते हैं; श्यामसुन्दर ने कह दिया कि विश्वास नहीं करती तो मेरा मुख देख ले; माँ ने कह दिया कि खोल मुख। अब खोलना तो नहीं चाहते थे लेकिन मातृकोपरवि रश्मियों से मुख खुल गया और मुख में तो मिट्टी है ही। तो माँ मेरे प्रभु को मारेगी पर मेरे रहते-रहते मेरे प्रभु पर छड़ी नन्दरानी कैसे चलायेगी ? इसलिए प्रभु के न चाहने पर भगवान् का मुख कमल जब खिला तो उस मुखकमल में माया ने अपने योग से ब्रह्माण्ड दिखा दिया। अब मुख भगवान् का खिला तो नन्दरानी देखती है भगवान् के मुखकमल में अनन्ताकाश, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, महान् समुद्र, और अनन्त ब्रह्माण्ड भगवान् के मुखकमल में नन्दरानी देखती हैं। माया ने दिखाया। और देखा प्रभु के मुख में ब्रज में, प्रभु के मुख में ही नन्दरानी भी खड़ी हैं प्रभु के मुख में ही वह गोपाल बाल कृष्ण भी दिखाई दे रहा है और वह दोनों हाथों को एक हाथ में पकड़ कर छड़ी दिखा रही हैं—यह सब तमाशा भगवान् के मुख में नन्दरानी ने देखा और माया ने दिखाया। इसलिए कि मुख में मिट्टी है; देख लेगी मां तो मेरे प्रभु को पीटेगी। मेरे रहते-रहते मेरे प्रभु को पीटे यह मुझसे देखा नहीं जायेगा। इसलिये प्रभु की इच्छा भले ही न हो तो भी मैं प्रभु का मुख जो प्रफुल्लित हुआ उसमें अनन्त ब्रह्माण्ड दिखलाकर माँ के हृदय में अद्भुत प्रभाव का प्राकट्य करके माँ के हाथ से छड़ी गिरवा दूंगी। वही हुआ जैसे ही नन्दरानी ने कृष्ण के मुख में ब्रह्माण्ड देखा, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, भूधर, सागर, गगन, पर्वत का दर्शन किया उसके हाथ से छड़ी गिर पड़ी। हाथ से छड़ी गिर पड़ी तो माया तो एक क्षण के लिये यह सब लीला थी। तो फिर अन्ततोगत्वा फिर नन्दरानी को हुआ कि यह तो किसी टुनहिन ने टोना लगा दिया है। मेरे लाला के मुख में अलाय-बलाय दिख रही हैं। ऐं-ऐं—यह उसको प्रतीत होने लगा।

तो कहने का अभिप्राय यह हुआ कि नन्दरानी भी—उं—नहीं समझती कि यह परात्पर ब्रह्म हैं। अब जब इस समय देखा चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, भूधर, सागर, गगन, पर्वत, अनन्त ब्रह्माण्ड उसके मुख में देखा तब बोलीं यह कौन है ?

'अथोअमुष्यैव ममार्भकस्य नः कश्चनोत्पत्तिक आत्मयोगः'

यह कोई देवी माया है या कोई आसुरी माया है। यह कोई माया नहीं हो सकती—'अथो अमुष्यैवममार्भकस्य'—यह मेरे बालक का ही कोई लोकोत्तर चमत्कार है। अघटित घटना पटीयान् स्वात्म वैभव है, जिसकी महिमा है, जिसके कारण इसके मुख में यह अनन्त ब्रह्माण्ड दिखायी देता है। अरे ! मैं तो बड़े भ्रम में थी, यह तो सर्व-शक्तिमान् नारायण है, परब्रह्म परमेश्वर है, मैं तो भूल से इसको अपना पुत्र मानती हूं—इत्यादि-इत्यादि भाव उठे। तो कहने का अभिप्राय यह है कि श्री कृष्ण के परब्रह्म होने पर भी सामान्यतया नन्दरानी भी हर समय परब्रह्म नहीं जानती थीं। जानती थी मेरा लाला, मेरा गोपाल बाल, मेरा लाडला लाल यही जानती थीं, और जितने भक्त थे यह सब यही समझते थे। ऐसे ही ब्रजभूमि है तो अद्भुत लेकिन सामान्य ही मालूम पड़ती है।

बादशाह के दरबार में एक तानसेन था तानसेन। तानसेन ने एक दिन दीपक राग

गाया, दीपक प्रज्ज्वलित हो गये। बादशाह ने कहा 'तानसेन आपसे बढ़कर कोई संगीत का मर्मज्ञ नहीं।' तानसेन ने कान पकड़ा बोला! हमारे गुरुदेव हरिदास स्वामी—हरिदास स्वामी—वह तो साक्षात् गन्धर्व के अवतार हैं; उनसे अधिक कोई संगीत का मर्मज्ञ नहीं है। बादशाह बोला तानसेन से कि लाओ उनको। उसने कहा कि वह किसी राजा महाराजा के दरबार में नहीं जाते वह तो राधारानी वृषभानुनन्दिनी नित्य निकुञ्जेश्वरी और उनके प्राण, प्राणनाथ कृष्ण चन्द्र परमान्द कन्द मदन मोहन—उन्हीं को वह तो अपना संगीत सुनाते हैं। तुमको सुनना हो, तो पहुंच जाओ वृन्दावन धाम में। कभी वह बिहारी जी के सामने अपने प्रभु का गुणगान करेंगे तब तुम सुन लेना। बादशाह गया। दर्शन किया हरिदास स्वामी का संगीत भी सुनने का उसको मौका मिल गया; बड़ा लोट-पोट हो गया। प्रार्थना किया कि प्रभु हमको आज्ञा दो। तो हरिदास स्वामी ने कहा जा—जा—केसीघाट का एक कोना टूटा है जाकर बनवा देना। केसीघाट गया वह। केसीघाट गया तो देखता है रत्नों का, रत्नों का केसीघाट। उसने कहा मैं तो सारी बादशाहत बेच डालूं तो भी यह केसीघाट का कोना नहीं बना पाऊंगा। आकर महाराज से कहा कि वह तो ऐस रत्नमय केसीघाट है मेरी सारी बादशाहत बिक जाने पर भी ऐसा रत्न कोई मिलेगा नहीं जैसे वह है। तो कहा-जा-जा—तुझे दर्शन हो गया और क्या तू केसीघाट बनवायेगा ? कहने का मतलब ? ब्रज अलौकिक है, अद्भुत है लेकिन हमको दिखता नहीं, हमको दिखता नहीं। कृष्ण भी हमको दिखता नहीं, ब्रज भी हम को दिखता नहीं; वहां के दिव्य लताएं, वहां के दिव्य गुल्म वहां के दिव्य सारस, हंस, पक्षी—वे सब अलौकिक वस्तुएं हैं किन्तु उनका दर्शन सबको नहीं होता।

बड़े भाग्यशाली को जन्म जन्मान्तरों, युगयुगान्तरों, कल्पकल्पान्तरों की जिसकी तपस्या है उस तपस्या से उसका दर्शन होता है। तो कहने का अभिप्राय यह हुआ कि—

वह जो गोप कन्याएं थीं उनका कात्यायिनी अर्चना करते-करते, तपस्या करते-करते, देह की, इन्द्रिय की, मन की, बुद्धि की, अहंकार की लौकिकता, प्राकृतता, भौतिकता बाधित होती थी। अलौकिकता, अप्राकृतता, रसात्मकता की वृद्धि होती थी। लेकिन अभी पूरी नहीं हुई थी, कमी थी। तब भगवान् ने वस्त्रों को छू दिया। छू दिया क्या मतलब हुआ? एक नियम है किसी लकड़ी में आग प्रगट। किसी लकड़ी में आग प्रगट नहीं है। जिस लकड़ी में आग नहीं प्रगट है उस लकड़ी में आग प्रगट करना हो तो क्या करोगे ? एक बहुत-सी लकड़ियां ऐसी हैं, जिनमें आग प्रगट नहीं है, उनमें आग प्रगट करना है तो क्या करें ? जिस लकड़ी में आग प्रगट हो उससे उसका सम्बन्ध जोड़ दो। सम्बन्ध जोड़ दोगे तो अव्यक्त अग्नि वाले काष्ट में भी अग्नि का प्राकट्य हो जाएगा। एक लकड़ी में अग्नि का प्राकट्य हो चुका है और दूसरी लकड़ी में अग्नि का प्राकट्य नहीं हुआ है तो उस अग्नि युक्त काष्ट का सम्बन्ध जोड़ दो तो अव्यक्त अग्नि वाले काष्ट में भी अग्नि का प्राकट्य हो जाएगा। समझा ? तो उन गोप कन्याओं के जो कपड़े थे—कपड़े। वह तो लौकिक थे, प्राकृत थे किन्तु श्री कृष्ण अलौकिक, श्री कृष्ण अप्राकृत है। यह वर्णन है आगे—श्री कृष्ण निरावरण ब्रह्म है। निरावरण ब्रह्म कृष्ण है। आगे हम बतलायेंगे इसका रहस्य।

कृष्ण निरावरण ब्रह्म है। उनका हस्तारविन्द, पादारविन्द, वदनारविन्द सब निरावरण

ब्रह्म ही ब्रह्म है; उसमें कोई भौतिक अंश नहीं है। शास्त्र भी प्रमाण है—'हरिनिर्गुणःसाक्षात्' यद्भजत निर्गुणोभजेत्'। हरि साक्षात् निर्गुण है। निर्गुण काहे को है ? सत्वगुण तो होता है भगवान् में। हां ! इसमें भी रहस्य है। इसमें रहस्य यह है कि यदि आँख और सूर्य और नारायण के बीच में बादल आ जाये तो सूर्यनारायण नहीं दिखेंगे। आँख और सूर्य के बीच बादल आ जाये तो सूर्य का दर्शन नहीं होगा। लेकिन आँख और सूर्य के बीच में चश्मा आ जाए आँख और सूर्य के दर्शन में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। ऐं ! चश्मा आ जाये तो ? सूर्य के बीच में तो सूर्य का दर्शन ही होगा। काष्ट आ जाए तो सूर्य का दर्शन नहीं होगा। मकान आ जाए तो सूर्य का दर्शन नहीं होगा। लेकिन चश्मा आ जाए तो वह सूर्य के दर्शन में बाधक नहीं बनता। क्योंकि स्वच्छ है, चश्मा स्वच्छ है। इसी तरह से सत्वगुण स्वच्छ है—सत्वगुण—हरिनिर्गुणसाक्षात् सत्व-स्वच्छ हैं। सत्व निर्गुण स्वरूप को ढकने वाला नहीं होता, आवरक नहीं होता। इसलिए निर्गुण, निराकार-ब्रह्म को सत्वगुण ढकता नहीं। इसलिए सत्व रहने पर वह निर्गुण है। इस तरह से साक्षात् परात्पर परब्रह्म कृष्ण ने उनके कपड़ों को स्पर्श कर लिया है, रख लिया अपने पास और फिर जब उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया तो उनको कपड़ा दे दिया। क्या मतलब हुआ ? उन कपड़ों में ब्रह्म का प्राकट्य हो गया। जैसे एक अव्यक्त अग्नि वाले काष्ट में व्यक्त अग्नि वाले काष्ट का सम्बन्ध जुड़ जाए, तो उसमें भी अग्नि का प्राकट्य हो जाता है; ऐसे ही निरावरण अखण्ड, अनन्त, परात्पर, परब्रह्म कृष्ण का सम्बन्ध होने से वह कपड़े भी साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हो गये। और उन कपड़ों को धारण करने से उन गोप कन्याओं ने जो उन कपड़ों को धारण किया; उन कपड़ों को धारण करने से,, उनकी जो लौकिकता, प्राकृतता, भौतिकता—कुछ बाकी थी वह भी खत्म हो गयी। ऐं! उनकी लौकिकता, प्राकृतता, भौतिकता जो बाकी थी खत्म हो गयी। उनमें अलौकिकता, अप्राकृतता, दिव्यता पूर्ण आ गयी। इस तरह कात्यायिनी अर्चनव्रत प्रसंग से गोप कन्याओं में दिव्यता आती गयी—दिव्यता आती गयी उनकी प्राकृतता, लौकिकता, भौतिकता बाधित होती गयी। अप्राकृत, अलौकिक, अभौतिक साक्षात् उनका स्वरूप बनता गया—।

तो इस दृष्टि से—मैंने कहा कि देह प्राकृत, भौतिक, लौकिक-देह इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार के सम्बन्ध से, अप्राकृत, अभौतिक, अलौकिक रसात्मक परब्रह्म स्वरूप का अनुभव नहीं हो सकता। जब हमारा देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार भौतिकता से प्राकृतता से व्याप्त है, परिप्लुत है, तब तक अप्राकृत, अलौकिक, अमायिक परात्पर, परब्रह्म कृष्ण का अनुभव नहीं किया जा सकता। तो हमने बतलाया कि श्री कृष्ण परमात्मा ने जो गोप कन्याओं का वस्त्र स्पर्श कर लिया, उनके उत्तरीय और कंचुकी आदि-आदि जो भी उनके वस्त्र थे, उन वस्त्रों को श्री कृष्ण ने स्पर्श कर दिया। श्री कृष्ण साक्षात् निरावरण परात्पर परब्रह्म है उस पर राजा परीक्षित ने एक प्रश्न किया था कि महाराज—

'कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्म तयामुने।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियाम् कथम् ॥'

कहते हैं यह गोप कन्याएं तो कृष्ण को केवल अपना कान्त मानती थीं; प्राणनाथ प्रियतम अपना कान्त मानती थीं, परब्रह्म जानती नहीं तो उनके गुण प्रवाह का उपराम कैसे हुआ?

यह जन्म-मरण की परम्परा जो गुण-प्रवाह है। यह 'पुनरपिजननम् पुनरपिमरणम् पुररपि जननी जठरेशयनम्'। बार-बार जन्म लेना, बार-बार मरना, बार-बार माता की उदरदरी में निवास करना यह तो गुण-प्रवाह है। सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों का यही प्रवाह है। बार-बार जन्म होना, बार-बार मरना, बार-बार दरिद्रता, दीनता, परतन्त्रता का अनुभव करना, बार-बार बुढ़ापा के पराधीन होना, मौत के पराधीन होना, यही गुण-प्रवाह है। यह गुण-प्रवाह का उपराम तब होता है जब परात्पर परब्रह्म का प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो। अपरोक्ष साक्षात्कार हो तब गुण प्रवाह का उपराम होता है।

राजा परीक्षित कहते हैं कि यह गोपांगना तो परात्पर परब्रह्म कृष्ण को भगवान् जानती नहीं थी। वह अपना प्राणनाथ प्रियतम परम प्रेमास्पद उपपति जानती थीं, तो उनके गुण-प्रवाह का उपराम कैसे हो गया ? यह राजा परीक्षित का प्रश्न है। उसी प्रश्न के साथ-साथ यह भी जोड़ लिया कि अगर कहो वस्तुतः परब्रह्म कृष्ण है; तो वस्तुतः सबके पति-पुत्र भी परब्रह्म ही हैं क्योंकि 'सर्वखल्विदं ब्रह्म'—यह वेद वचन है। सब कुछ ब्रह्म है। वहां युक्ति दिया कि 'तज्जलानितिशान्त उपासीत्'। जैसे महासमुद्र में उत्पन्न होने वाला तरंग, फेन, बुद्बुद्—सब महासमुद्र ही हैं। जैसे महासमुद्र में उत्पन्न तरंग, फेन बुद्बुद् सब महासमुद्र हैं; ऐसे ही—

'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्द यानि जीवन्ति आनन्दप्रयन्त्यभिसंविशन्ति॥'

'आनन्द समुद्र परात्पर परब्रह्म से सारा प्रपंच पैदा होता है, सारा विश्व प्रपंच उसी में स्थित होता है; सब प्रपंच उसी में विलीन हो जाता है—तो सब कुछ ब्रह्म ही है'—तब तो हर एक स्त्री का अपने पति-पुत्र परब्रह्म ही है। तो वस्तुतः परब्रह्म की बात कहो तो हर एक स्त्री का अपने पति-पुत्र में प्रेम करने से मुक्ति हो जानी चाहिये। यदि कहो कि वहां ज्ञान अपेक्षित है तो यहाँ तो ज्ञान हुआ नहीं इनको फिर इनका गुण-प्रवाह का उपराम कैसे हो गया? इसलिये क्या समाधान ?

तो इसका उत्तर भगवान् शुकदेव ने दिया राजन् कृष्ण जो है निरावरण ब्रह्म है। पति-पुत्रादि जो है स्त्रियों के पति-पुत्रादि वह तो सावरण ब्रह्म है। ऐसे सब ब्रह्म ही ठीक है—'सर्वखल्विदं ब्रह्म'—सब कुछ ब्रह्म है; लेकिन सावरण ब्रह्म हैं जगत् भी ब्रह्म है लेकिन सावरण ब्रह्म है। माया का आवरण, माया का पर्दा। माया का पर्दा ऐसा है कि ब्रह्म 'अस्ति', 'भाति', 'प्रियं',—अनन्त सत्ता, अनन्त बोध अनन्त आनन्द है वह ब्रह्म; लेकिन वह आवृत्त है, ढका हुआ है। नाम रूप ही का प्राकट्य है। 'घट' नाम, 'घट' रूप, 'पट' नाम, 'पट' रूप। नाम-रूप का प्राकट्य है। सत्-चित्-आनन्द-अस्ति, भाति, प्रियं—यह छिपा हुआ है। इसलिये निरावरण ब्रह्म जब तक न हो, तब तक पति-पुत्रादि के भजने से मुक्ति का कल्याण नहीं हो सकता।

लेकिन कृष्ण ? कृष्ण तो निरावरण ब्रह्म हैं। जिसका चाहे ज्ञान न हो। इसी तरह से कृष्ण को भजने से मुक्ति हो जाती है। वहां श्रीधर स्वामी लिखते हैं—'न हि भक्तु शक्तिर्ज्ञानमपेक्षते'—भक्ति शक्ति ज्ञान की अपेक्षा ही नहीं करती। तैसे यदि विष बुद्धि से ही अमृत पियो। अमृत पियो विष बुद्धि से, जहर बुद्धि से—अमृत पियो तो भी उसका फल

अमरत्व होगा ही। वैसे ही कृष्ण—परात्पर परब्रह्म शुद्ध निरावरण ब्रह्म हैं। इसको जानकर भजो, बिना जाने भजो, जार बुद्धि से भजो—किसी भी बुद्धि से भजो कल्याण होगा।

इसलिए कहा है कि—

'नृणां निः श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥'

प्राणी मात्र का कल्याण करने के लिए अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक, सच्चिदानंदघन, परात्पर परब्रह्म कृष्ण के रूप में प्रगट हुआ है नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप'। कहा कि कौन भगवान् ? बोले !

'निर्गुणस्य'—'अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः'

अव्यय परब्रह्म, अप्रमेय परब्रह्म, गुणों का आत्मा परब्रह्म, निर्गुण परात्पर परब्रह्म है। इसलिये इससे—**'कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च, नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हिते'**।

किसी को काम भी हो जाए श्रीकृष्ण में, उसका भी बेड़ा पार, किसी को क्रोध भी हो जाय कृष्ण में तो भी बेड़ा पार, किसी को भय हो जाय कृष्ण में उसका भी बेड़ा पार। 'कामं, क्रोधं, भयं, स्नेहं'। किसी का कृष्ण में काम हो, क्रोध हो, भय हो, स्नेह हो जिस किसी तरह से भी—येन केन प्रकारेण 'मनः कृष्णेनिवेशयेत्' जिस किसी प्रकार से कृष्ण से मन सन्निविष्ट हो जाए, तो उसका बेड़ा पार हो जाता है। क्योंकि निरावरण ब्रह्म है यहाँ ज्ञान की अपेक्षा नहीं है। श्रीधर स्वामी कहते हैं कि—

'नहि भक्तुर्शक्तिर्ज्ञानमपेक्षते'।

भक्तु शक्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं करती। इसलिये बोले—

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिंयथा गतः।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षज प्रियाः॥

'उक्तमेतत् पुरस्तादेतत्ते'—डाटकर कहते हैं—'राजा परीक्षित ! तुमसे पहले कह चुके हैं हम—''उक्तमेतत् पुरस्ताद् ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः'।

शिशुपाल जैसे सिद्धि को प्राप्त हो गये। जब शिशुपाल भी, दन्तवक्त्र भी, कंस भी, यथाकथंचित् कृष्ण का चिन्तन करने से मुक्त हो गए तो—'किमुताधोक्षज प्रियाः' ? यह तो अधोक्षज की प्रियाएं हैं—परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द परमानन्दकन्द की प्रेयसी जन हैं; अन्तरंग भक्तजन हैं इनके सम्बन्ध में कैसी कल्पना तुम करते हो ? कि इनका—

'गुण प्रवाहोपरमस्तासां गुणधियाम्कथम्।

यह गुण वृद्धि वाली थी इनके गुण-प्रवाह का उपराम कैसे हो गया ?—यह तुम शंका करते हो ? देखो ! हां !! काम, क्रोध, स्नेह, भय जिस किसी भी तरह से कृष्ण का चिन्तन करने से कंस का भी कल्याण, शिशुपाल का भी कल्याण, दन्तवक्त्र का भी कल्याण और भिन्न-भिन्न राक्षसों, दैत्यों, असुरों का कल्याण हुआ, तो गोपांगना तो उनकी परम अन्तरंगा हैं। तो इसलिए आया कि भगवान् कृष्ण ने जो कपड़ा छू लिया। कृष्ण निरावरण परब्रह्म था। निरावरण कृष्ण के स्पर्श से वह कपड़ों में व्यापक जो ब्रह्मता थी प्रगट हो गयी।

माने ? अव्यक्त अग्निवाले काष्ठ में व्यक्त अग्नि वाले काष्ट का सम्बन्ध हो गया। तो अव्यक्त काष्ठ में भी अग्नि का प्राकट्य हो गया। उनके कपड़ों में परब्रह्मता का प्रादुर्भाव हो गया। उन कपड़ों को गोपकन्याओं ने पहना इसलिए उनमें भी जो कुछ कमी थी, प्राकृतता के विनाश में, भौतिकता, मायिकता के विनाश में, वह पूरी हो गयी। अलौकिकता, अप्राकृतता, अमायिकता, रसात्मकता के प्रादुर्भाव में जो कमी थी वह पूरी हो गयी।

अन्त में सबसे अन्तिम बात कृष्ण भगवान् ने उनको वरदान दिया—**'मयेमारंस्यक्षपाः'**—यह वरदान दिया। तुम्हारे मन की बात हमने जान लिया; तुम हमें दुल्हा बनाकर प्राप्त करना चाहती हो। हम तुम्हारे साथ रासक्रीड़ा करेंगे। देखो ! **'इमाः क्षपाः'**—रात्रियाँ तत्काल सामने आ गयीं।

भगवान् सत्य संकल्प हैं। तो वे दिव्य रात्रियाँ। देखो सामान्य रात्रियों में रास नहीं हुआ। प्रहरचतुष्टयवती एक रात्रि में अनन्त कोटि-ब्राह्मी रात्रियों का सन्निवेश हुआ। ऊपर से तो देखने में चार प्रहर की ही रात्रि है—प्रहरचतुष्टयवती एक रात्रि में कोटि-कोटि ब्राह्मी-रात्रियों का सन्निवेश हुआ। उन रात्रियों में; उन रात्रियों में चमत्कार है। यह रात्रियाँ प्राकृत रात्रियाँ नहीं हैं वह दिव्य रात्रियाँ हैं, दिव्य शीतलमय, जहाँ दिव्य आभा-प्रभा-ऐसी अद्भुत रात्रियाँ। उन्हीं रात्रियों को वरदान के रूप में दिया था। जैसे भगवान् ने मन में सोचा तैसे ही रात्रियाँ सामने आ गयीं। तो भगवान् ने कहा 'इमाः क्षपाः'। यह जो सामने रात्रियाँ दिख रही हैं इन रात्रियों में हम लोगों के साथ रमण करेंगे। वह वरदान रूप में दी हुयी रात्रियाँ। भगवान् ने उन्हीं रात्रियों को देखा—वही—'ता रात्रीः'—**'भगवानपि ता रात्रीः'**—**'मयेमाः रंस्यथः क्षपाः'**—इस वरदान रूप से प्राप्त रात्रियों में तुम हमसे रमण करोगी। वही रात्रियाँ भगवान् के सामने उपस्थित हो गयीं। भगवान् ने उन्हीं रात्रियों को देखा। रात्रियों की बड़ी महिमा लिखी है यह रात्रियाँ—'रा दाने'—'रा दाने' की रात्रियाँ। दान देने वाली रात्रियाँ। कौन दान देने वाली ? आ हा ! दान वह है जो अपेक्षित को दान दे और दुर्लभ वस्तु को दान दे। दुर्लभ वस्तु। दान कौन दुर्लभ सब से बड़ा दुर्लभ श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द मदनमोहन। कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द मदन मोहन का दान देने वाली; यह रात्रियाँ, गोपागनाओं को श्री कृष्ण का दान करेंगी। रात्रियों की बड़ी महिमा है। यह रात्रियाँ दान शीला हैं किसका दान करती हैं ? परात्पर परब्रह्म श्री कृष्ण का ही दान करती हैं। किसके लिए दान करती हैं ? जो उनको चाहते हैं। जो गोपांगनाएं जन्म-जन्मान्तरों, युग-युगान्तरों, कल्प-कल्पान्तरों से भगवान् की आराधना कर रही थीं उनके पाने के लिए उत्कट उत्कण्ठा लिये हुए बैठी थीं, उनको दान करने वाली। किसका दान करने वाली ? परब्रह्म का दान करने वाली। अर्थात्! अनन्त भक्तों को भगवत्तत्त्व को प्रदान करने वाली ये रात्रियाँ। ऐसी रात्रियाँ। दान शीला रात्रियाँ—'ताः रात्रीः'—माने—विलक्षण रात्रियाँ। 'मयेमाः रंस्यथः क्षपाः'। रात्रियों को वरदान रूप से भगवान् ने प्रदान किया है वह रात्रियाँ सामने हैं। उन्हीं रात्रियों को भगवान् ने देखा अपने मन में—'ताः गोपकन्याऽपि समीक्ष्य'। उन गोपकन्याओं को देखा। क्योंकि एक 'सम्बन्धीज्ञानम् इतर सम्बन्धिनं स्मारयति'—एक सम्बन्धी का ज्ञान इतर सम्बन्धी को भी, दूसरे सम्बन्धी को भी, याद दिलाता है। तो रात्रियाँ सामने आयीं तो रात्रियों को देखा। उनकी

दिव्य आभा प्रभा महत्व को देखा, उनके अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य को देखा और उनके प्रसंग में उन गोप कन्याओं का स्मरण किया, गोपकन्याओं के दिव्य प्रेम का अनुस्मरण किया, उनके दिंव्य सौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध का स्मरण किया—और उनको सबको स्मरण करके—'भगवानपि' । वहां तो—

'आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थं भूतगुणो हरिः॥'

निर्ग्रन्थ लोग भी भगवान् में भक्ति करते हैं कहा परन्तु उनसे भी ज्यादा बात है कि—'भगवानपि—निर्ग्रन्थों में तो ज्ञान भगवान् की कृपा से आया। महामुनीन्द्र-योगीन्द्र अमलात्मा-परमहंसों में वैराग्य भगवान् की कृपा से आया और जिनमें परम-विज्ञान है, सहज वैराग्य है—ऐसे अनन्त ज्ञान सम्पन्न—

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥'

जिसमें सांगोपांग समग्र ऐश्वर्य, समग्र वैराग्य, समग्रयश, समग्र धर्म, समग्र श्री समग्र ज्ञान जिनमें है ऐसे परात्पर परब्रह्म भगवान् का भी मन—'भगवान्-अपि' 'भगवानपि ता रात्रीः वीक्ष्य'—भगवान् ने भी उन रात्रियों का वीक्षण करके उन गोपांगनाओं को वीक्षण करके 'ता आहूय'—उन सबको आह्वान करके—'ताभिसह रन्तुं' उनके साथ रमण करने के लिये भगवान् ने मन बनाया अभी तक तो मन था ही नहीं। भगवान् अमना थे। 'अप्राणोह्यमनाःशुभ्रः' भगवान् अमना हैं, अप्राण हैं—'रन्तुं मनश्चक्रे' भगवान् ने मन बना लिया अपना मन बनाया। मन् था ही नहीं। बिना मन के रसास्वादन नहीं आयेगा, रास क्रीड़ा का रसास्वादन नहीं आयेगा।

गोप कन्याओं के अनन्त प्रेम की माधुर्यानुभूति नहीं होगी। इसलिये मन का निर्माण अपेक्षित है। इसलिये अमना भगवान् ने—'मनश्चक्रे'—मन का निर्माण किया और भगवान् भी, सर्व शक्तिमान् भी, अनन्त ज्ञान सम्पन्न भी, वहां तो योगीन्द्र, मुनीन्द्र, अमलात्मा परमहंस भगवान् के सौन्दर्य से मोहित हो करके भक्ति करने में प्रवृत्ति हुये थे पर यहाँ तो भगवान् ही उन गोपांगनाओं के उन दिव्य रात्रियों के लोकोत्तर प्रभाव से प्रभावित होकर आप्तकाम पूर्ण काम भी वे इतने उत्कण्ठित हुये कि अमना ने मन बनाया। मन का निर्माण किया।

'भगवानपि-ता-रात्रिः—वीक्ष्य-रन्तुं मनश्चक्रे'

—श्री राम जय राम जय जय राम—

(७-४-८१)

श्री कृष्ण; गोपांगना और रासक्रीड़ा

मंगलाचरण भगवन्नाम संकीर्तन एवं धर्म जयघोषों के अनन्तर धर्मसम्राट् पूज्यपाद स्वामी जी महाराज ने अपने प्रवचन में कहा–

'रास पंचाध्यायी' बहुत गम्भीर और दुरूह विषय है। दस-पांच दिन में तो इसके सुनने से, सुनने के संस्कार बनते हैं। तब बात समझ में आना शुरू होता है। तो कल जो हम बात कह रहे थे कि श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द निरावरण ब्रह्म हैं, उन्होंने गोपकन्याओं के वस्त्रों को स्पर्श किया। तो यह हुआ कि वस्त्रों में भी ब्रह्मता का प्राकट्य हो गया, दिव्यता का आविर्भाव हो गया। वह वस्त्र सामान्य वस्त्र नहीं वह उत्तरीय, वह कंचुकी वह जो उनकी, गोपकन्याओं की जो वस्तुएं थीं, उनका श्रीकृष्ण ने स्पर्श किया, उस स्पर्श का उद्देश्य यही है कि निरावरण परब्रह्म श्रीकृष्ण के स्पर्श से उनमें रसात्मकता दिव्यता आ गयी। दृष्टान्त वही कि कुछ काष्ठों में अग्नि प्रगट है कुछ काष्ठों में अग्नि अप्रगट है। जिन काष्ठों में अग्नि अप्रगट है उनमें अग्नि प्रगट करने के लिए यह आवश्यक है कि उस काष्ठ से सम्बन्ध जुड़ जाय, किस काष्ठ में अग्नि प्रगट है और साक्षात् अग्नि का सम्पर्क हो जाय तो फिर कहना ही क्या है ? यहाँ तक कि–इसीलिए माना गया है–परम्परा से उपासना चलती है। उपासना मनमानी नहीं चलती। शास्त्रों में लिखा है कि–

'पुस्तके लिखितान्मन्त्रान्दृष्ट्वा जपति यो नरः।
स जीवन्नेव चाण्डालो मृतः श्वा चाऽभिजायते॥'

पुस्तक में लिखे हुए मन्त्र को देखकर जो जप करना शुरू करते हैं–वह भयंकर बात है–समझ लो पाप होता है। इतना ही समझ लो। खाली पुस्तक में देखकर मन्त्र को जप नहीं करना चाहिए। जो जपता हो अनादिकाल से, परम्परा से उससे जानकर, पूछकर, समझकर तब मन्त्र जपना चाहिये। मनमानी पुस्तक देखकर मन्त्र नहीं जपना चाहिए। तो ऐसी परिस्थिति में क्यों ? क्योंकि वह आचार्यों में, महानुभावों में, सन्तों में, विद्वानों में उस परब्रह्म का प्राकट्य है उसके द्वारा उसके सम्बन्ध से जो मन्त्र प्राप्त होगा उस मन्त्र में विशेषता होगी, सामान्य मन्त्रों की अपेक्षा। पुस्तकों में लिखे मन्त्रों की अपेक्षा, जो अनुष्ठीय हैं, अनुष्ठान करने वाले हैं, परिनिष्ठत हैं उनके सम्बन्ध से उन मन्त्रों में विशेषता आती है। 'मन्त्रमहार्णव में हजारों मन्त्र हैं जिनमें बड़े चमत्कार हैं, यह फल है यह फल है पर फलवल कुछ नहीं दिखलायी देता। फ़ल लिखा हुआ है पर कोई फल आज दिखलाई नहीं देता क्यों ? क्योंकि उनकी परम्परा आज लुप्त है। परम्परा लुप्त होने के कारण, आचार्य पारम्पर्य से प्राप्त न होने के कारण जो चमत्कारपूर्ण फल है वह दिखायी नहीं देता।

हां तो यह कह रहे थे कि श्री कृष्ण की लीला जगत् की सृष्टि से श्री कृष्ण की लीला

की सृष्टि पृथक् है—**'एतदात्मानमेव स्वयमकुर्वत'**। उसकी व्याख्या करते हुए श्री मद् वल्लभाचार्य जी ने विस्तार से वर्णन किया है। उनकी दृष्टि में ब्रज और ब्रज के जो श्री गोपांगना जन, ग्वाल-बाल, नन्द बाबा, यशोदारानी, नन्दराय यह सब जो कृष्ण की सामग्री, कृष्ण की लीला, कृष्ण के परिकर और सामग्रियां हैं सब भौतिक जगत् से अलग हैं। सामान्य भौतिक जगत् से वह अलग हैं। अलीगढ़ के सूर्य नारायण अलग हैं वृन्दावनधाम के सूर्य नारायण अलग हैं। अलीगढ़ का चन्द्रोदय पृथक् है वृन्दावनधाम का चन्द्रोदय पृथक् है। भेद नहीं मालूम पड़ता। जैसे कृष्ण में नहीं मालूम पड़ता। सामान्य कृष्ण। सामान्य बालक में और कृष्ण में क्या भेद ? कोई भेद नहीं मालूम पड़ता। सामान्य औरतें और ब्रज की जो औरतें उनमें क्या फर्क है ? कोई भेद मालूम नहीं पड़ता। लेकिन शास्त्र की दृष्टि से बहुत भेद हैं। यह समझ लो कि 'तदात्मानमेव स्वयमकुर्वत'—के सिद्धान्तानुसार परमात्मा सच्चिदानन्द घन परब्रह्म ने अपने आपको कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द के रूप में प्रगट किया। अपने आप को वृषभानुनन्दिनी राधारानी के रूप में प्रगट किया। अपने आप को ब्रज के परिकर के रूप में प्रगट किया। ब्रज के जितने सरोवर, जितनी सरसियां हैं, जितने मालती मल्लिका, जाती, यूथिका आदि पुष्प लतायें हैं, कदम्ब हैं—यह सब कृष्ण ने अपने आपको उन रूपों में प्रगट किया। आ हा ! वह लौकिक, प्राकृत वस्तु नहीं है। अलौकिक वस्तु है।

फिर वहाँ क्या हुआ ? एक और बड़ा विकटाद (बखेड़ा) खड़ा हुआ। अब अगर राधारानी भी कृष्ण हैं, कृष्ण भी कृष्ण हैं, गोपांगनाएं भी कृष्ण हैं, ब्रज के सरोवर और सरसी भी कृष्ण हैं, हंस, सारस, कारण्डव आदि पक्षी सभी कृष्ण हैं—तो फिर किसी का किसी में आकर्षण क्यों होगा ? तो राधारानी का कृष्ण में आकर्षण क्यों ? तो कृष्ण का राधारानी में आकर्षण क्यों ? जो आप्तकाम, आत्माराम, पूर्णकाम. परमनिष्काम स्वप्रकाश, परब्रह्म स्वरूप उसका दूसरे में आकर्षण क्यों ? राधारानी का कृष्ण में आकर्षण क्यों ? कृष्ण का राधारानी में आकर्षण क्यों ? गोपांगनाजनों का कृष्ण में आकर्षण क्यों ? सरोवरों में, कुमुद कुमुदिनी, कमल कमलनियों में, मल्लिका, मालती, जाती, यूथिका में, वहां के शीत मन्द सुगन्ध पवन में भी किसी का आकर्षप क्यों होगा ? सभी तो ब्रह्म ही है। सभी तो पूर्णतम पुरुषोत्त्म परब्रह्म है ? इसलिये फिर वहां आगे यह घटना घटती है कि मोहिनी शक्ति। मायाशक्ति नहीं, अविद्या भी नहीं, माया भी नहीं अपितु मोहिनीशक्ति। मोहिनीशक्ति से भगवान् अपने आपको भूल जाते हैं राधारानी अपने आपको, अपनी ब्रह्मता को, अपनी अनन्ता को, अपनी स्वप्रकाशता को सब को भूल जाती हैं। तो जैसे भंगपान करके रसिक लोग आत्मविस्मृति सम्पादन करते हैं। आत्मविस्मृति। ऐसे ही मोहिनी शक्ति के द्वारा-मोहिनीशक्ति का प्रयोग हुआ। इसलिये राधारानी अपनी अनन्ता अपनी परब्रह्म स्वरूपता को भूलकर कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द मदनमोहन की ओर आकृष्ट होती हैं। यहाँ तक कि वहाँ के सरोवरों की ओर आकर्षण, कुमुद-कुमुदिनियों, कमल-कमलनियों की ओर आकर्षण—सब इसी आधार पर हैं। सभी परब्रह्म स्वरूप हैं; सभी चिन्त्य, अनन्त परमानन्दघन हैं। यह भगवान् शंकराचार्य जी ने भी अपने प्रबोधसुधाकर नामक ग्रन्थ में श्री कृष्ण की बड़ी अद्भुत लीलाओं का वर्णन

किया है। अब जब ब्रह्मता है तभी प्राकट्य हो सकता है। ब्रह्मता नहीं है तो कैसे प्राकट्य हो ? यद्यपि पूर्व सिद्धान्त के अनुसार तो सारा जगत ही 'सर्वं खल्विदंब्रह्म' है। सारा जगत्, अणु-अणु, परमाणु-परमाणु, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक विश्व प्रपंच सब ब्रह्म का ही विवर्त्त है।—'अजायमानो-बहुधाव्यजायत'। परमात्मा अजायमान है तो भी 'बहुधाव्यजायत'—माने अनन्तानन्त प्रपंच के रूप में उसका प्रादुर्भाव हो गया। यह विवर्त्तवाद है। तो इस दृष्टि से सारा विश्व प्रपंच ही ब्रह्म है। इसलिये ब्रह्मता का प्राकट्य सब जगह सम्भव है लेकिन फिर भी सब की अपेक्षा ब्रज में, और ब्रज के परिकरों में और विशेष रूप से ब्रह्म का आविर्भाव होता है। तो इसलिये। पर इसके लिए तो कोई निमित्त चाहिये। निमित्त चाहिये तो निमित्त वही, क्या ? वही निरावरणब्रह्म का सीधा सम्पर्क। तो जैसे आपने यह जाना होगा कि भगवान् ने क्यों बजायी वेणु ? वेणु क्यों बजायी ? और वेणु का दो प्रकार का स्वरूप है एक तो नादामृत और एक गीतामृत। एक तो नाद है वेणुनाद। नाद का कोई अर्थ नहीं होता, लेकिन गीत का तो अर्थ होता हैं, उसमें शब्द होते हैं, उनके अर्थ होते हैं, लेकिन नाद तो अव्यक्त होता है—**'अव्यक्तैः शब्दैः'**। पर नाद में भी चमत्कार है गीत में भी चमत्कार है नाद। जितने भर भी ब्रज के सरोवर हैं, ब्रज की सरसियां हैं, ब्रज की नदियाँ, ब्रज की लताएँ, ब्रज के कदम्बादि—इन सब के सब में साक्षात् श्री कृष्ण रूपता के प्राकट्य के लिये नादामृत का विस्तार है। तो जो कृष्ण परब्रह्म स्वरूप है और बन्शी। बन्शी रुद्रस्वरूप है—हमने पहले बता दिया कि वन्शी रुद्रस्वरूप है। श्री कृष्ण साक्षात् परब्रह्म स्वरूप है। जिन्होंने अपने मुखचन्द्र पर बन्शी को धारण किया। अपने अधरामृत को, मुखचन्द्र के सुमधुर अधरामृत को, बन्शी के छिद्रों में सन्निविष्ट किया वह नादामृत बना। नादामृत बनकर जहाँ-जहाँ तक नाद पहुंचा, वहाँ-वहाँ की सब वस्तुओं में श्री कृष्ण रूपता का प्राकट्य हो गया। वह सरोवर, वह कमल-कमलिनी, वह कुमुद-कुमुदिनी, वह हंस, सारस, कारण्डव आदि वे विहंगम, वह भृगांवली, भृगंसमुद्समूह—इन सबके सब में श्री कृष्ण स्वरूप हो हैं। ये हम सब क्यों कह रहे हैं ? इसलिये कह रहे हैं कि कृष्ण आत्माराम हैं। आत्माराम का रमण केवल आत्मा में ही होता है अनात्मा में नहीं। यदि वहाँ की यमुना, वहाँ का गोवर्धन, वहाँ का प्रेमसरोवर, वहाँ का कृष्ण सरोवर, वहाँ का राधाकुण्ड—यह सबका सब श्री कृष्ण का आत्मा नहीं बन जायेगा, तब तक कृष्ण का उस आत्मा में रमण कैसे होगा ? कृष्ण तो आत्माराम हैं। आत्मा में ही रमण होता है, अन्यत्र कहीं उनका रमण होता नहीं। जिन वस्तुओं में कृष्ण का रमण होता है, उन सब में कृष्ण की आत्मा का प्रादुर्भाव होता है। इसलिये यमुना नदी में कृष्ण का रमण होता है। ब्रज के उन कुमुद-कुमुदिनियों में कृष्ण का रमण होता है। उन मल्लिका, मालती, जाती, यूथिकाओं में कृष्ण का रमण होता है। उन शीलत मन्द सुगन्ध पवन में भी श्री कृष्ण का रमण होता हे; लेकिन कृष्ण का रमण केवल आत्भा में होता है और कहीं होता नहीं, इसलिये उन सब में कृष्ण की आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। तो कैसा आत्मा का प्रादुर्भाव। श्री कृष्ण का आत्मा स्वरूप है। उसमें जो मुखचन्द्र में अधरामृत है वही बन्शी छिद्रों में प्रविष्ट हुआ। वेणुनादामृत बनकर जहाँ-जहाँ तक पहुंचा उन सब में श्री कृष्ण की आत्मा का प्रादुर्भाव

हुआ। इस तरह से गीतामृत। गीतामृत का भी प्रवेश हुआ। नादामृत की महिमा अलग है, गीतामृत की महिमा अलग है। गीतपीयूष, गीतामृत, गोपांगनाओं के निरावरणकर्ण कुहरों द्वारा उनके अन्तःकरण में सन्निविष्ट हुआ। और नाद कथा लिखी है—

'शक्र शर्व परमेष्टि पुरोगाः कश्मलं ययुरनिश्चित तत्त्वाः'

इन्द्र शर्व—भगवान् भूतभावन सदाशिव अपने कैलाश में उठे हैं। शक्र शर्व, परमेष्टी ब्रह्मा यह सब नादामृत को सुनकर-उनकी सबकी बुद्धि उसी में तल्लीन हो जाती है। 'कश्मलंययु' मूर्छा को प्राप्त हो जाती है 'अनिश्चिततत्त्वाः'—निश्चित नहीं कर पाते है कि क्या है ? क्या चमत्कार है ? निश्चय नहीं कर सकते यह है नादामृत की बात। और गीतामृत को विशिष्ट करके केवल गोपांगनाओं के निरावरण कर्ण कुहरों के द्वारा उनके अन्तःकरण में जाता है। गीतामृत। और-फिर क्या होता है उनके भीतर जा करके ? आप सोचिये ! जैसे बीच बोया जाता है; बीज कहाँ बोया जाता है ? खेत में। क्या हो ? जहां स्निग्ध हो। बिल्कुल सूखा हो, तो बीज बोने से अंकुरित होता है। धरणी, अनल, जल का संसर्ग होने से वह बोया हुआ बीज अंकुरित होता है ? श्री कृष्ण ने कौन बीज ? काम बीज। कामबीज!! एक बात हुयी। प्रसंग से प्रसंग आता है। स्थिति यह हुयी कि कामदेव जो कन्दर्प है उसने ब्रह्मा को भी जीत लिया और बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र अमलात्मा, परमहंसों को भी जीत लिया। अब उसको घमण्ड हो गया कि हमारा मुकाबला करने वाला कोई है ही नहीं। नारद जी से पूछा—'है कोई संसार में विजयी जो हमसे युद्ध कर सके ?' कहा कि 'हाँ है'। बोले 'कौन है ?' बोले! श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द मदनमोहन हैं। वह तुम्हारी इच्छा पूरी कर सकते हैं उनसे युद्ध करो। श्रीधरस्वामी लिखते हैं—

'ब्रह्मादि जय संरूढ़ दर्प कन्दर्प दर्पहा।
जयति श्री पतिर्गोपी रासमण्डल मण्डनः॥'

श्री कृष्ण कौन हैं ? बोले—'ब्रह्मादि जय संरूढ़ दर्प कन्दर्प दर्पहा।' ब्रह्मादि को जीत लेने से जिसमें दर्प हुआ है दर्प। दर्प मानें घमण्ड। ब्रह्मादिकों को जीत लेने से संरुढ़ हुआ है दर्प जिसमें ऐसा जो कन्दर्प। उस कन्दर्प के दर्प को हरण करने के लिये श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द का यह रासलीला है। रासलीला का उद्देश्य है—'ब्रह्मादि जय संरूढ़ दर्प कन्दर्प दर्पहा'। तो कन्दर्प गया भगवान् के सामने। भगवान् ने कहा 'कहो कैसे आये'! बोला—'नारद जी ने भेजा है।' कहा—'क्यों' ? बोले—'युद्ध आप हमसे कर सकते हैं; नहीं कर सकते तो हमें विजय पत्र लिख दीजिये और कर सकते हैं तो बोलो कैसे आप युद्ध करेंगे।' तो भगवान् ने कहा कि 'भाई! युद्ध दो तरह का होता है—एक तो यह कि दोनों मैदान में हों—मैदानेजंग। दोनों मैदान में स्थित होकर युद्ध करें। और एक है किला का, जो कमजोर है वह किला का आश्रय करे और दूसरा जो है वह बिना किला के युद्ध करे। कहते हैं कि—'जरा इसका स्पष्टीकरण कीजिये।' कहा—'स्पष्टीकरण यह है कि अगर हम समाधि लगाकर बैठ जायें, अरण्य में, बन में समाधि लगाकर बैठ जायें। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय पंचकोष देह में हैं। स्थूल देह अन्नमय, उसके भीतर प्राणमय उसके भीतर मनोमय,

उसके भीतर विज्ञानमय, उसके भीतर आनन्दमय। हम निर्विकल्प समाधि में बैठकर, अन्नमय, प्राणमय मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय पंचाकोषों से अतीत, अजर, अमर, अनन्त, अखण्ड, स्वप्रकाश आत्मा में समाधि लगाए लें और तुम अपना बाण चलाए दें। तुम अपना बाण चलाओ। तुम अपनी अप्सराओं का प्रयोग करो। शीलत मन्द सुगन्ध पवन का प्रयोग करो। बसन्त का प्रयोग करो। अगर हमारा मन डगमगाय जाय, तो हम हार गये, तुम जीत गये। और अगर हमारा मन न डगमगाय तो हम जीत गये तुम हार गये। कहता है और 'दूसरा ढंग क्या है।' बोले—दूसरा ढंग यह है कि दिव्य वृन्दावन धाम हो, शीतल मन्द सुगन्ध पवन का संचार हो, चान्द्रमसी ज्योत्सना सम्यक् विकसित हो, मल्लिका, मालती, जाती, यूथिका आदि पुष्प विकसित हों, कमल कमलिनी विकसित हों। अनन्त आनन्द साम्राज्य चारों ओर सुहावना लग रहा हो। और अनन्त-अनन्त गोपांगनाओं के साथ हम क्रीड़ा करें, लीला करें, नृत्य करें, गान करें, स्पर्श करें—फिर भी हमारे मन में कोई विकार उत्पन्न हो जाय तो तुम जीत गये, हम हार गये। अगर कोई विकार न हुआ तो तुम हार गये हम जीत गये। बोले। 'बस-बस यही लड़ाई हमसे करो, यही लड़ाई हमसे करो।'

तो यह तो स्थिति हुई। तय हुआ कि युद्ध होगा वृन्दावनधाम में; वह दिव्य गोपांगनाएं, दिव्य गोप कन्याएं, रमा-लक्ष्मी भी जिनके अनन्त सौन्दर्य पर मोहित होती हैं; रम्भा-उर्वसी-शची आदिकों की तो कहानी छोड़ो, ऐश्वर्य-माधुर्य की अधिष्ठात्री भी जिनके अनन्त माधुर्य पर मोहित होती हैं, ऐसे दिव्य-दिव्य अङ्गनाएं वृन्दावन धाम में, शीतल मन्द सुगन्ध पवन का संचार है, चान्द्रमसि ज्योत्सना सम्यक् विकसित है, और दिव्य मल्लिका, मालती, जाती, यूथिका आदि दिव्य पुष्पों का दिव्य सुगन्ध का विकीर्ण हो रहा है और कृष्ण चन्द्र परमानन्दकन्द उनमें क्रीड़ा करें—यह सारी स्थिति है।

तो भगवान् कृष्ण ने सोचा बात ठीक है लेकिन कन्दर्प तो शंकर जी की कोपाग्नि में दग्ध हो चुका है—तो दग्ध वीर से युद्ध करना उसको जीत लेना कोई बड़ी बात नहीं है। राहु आक्रमण करता है सूर्य पर चन्द्रमा पर तो पूर्ण चन्द्र पर आक्रमण करता है, द्वितीया को आक्रमण नहीं करता, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, अष्टमी को आक्रमण नहीं करता-पूर्णचन्द्र पर आक्रमण करता है अपूर्ण पर नहीं। इसी तरह से सूर्य की स्थिति भी पूर्ण होती है तब राहु का आक्रमण होता है। तो हमने अपूर्ण शिवलोक से दग्ध कन्दर्प को जीत भी लिया, तो भी कोई बड़ी बहादुरी नहीं। इसलिये पहले कन्दर्प को उज्जीवित करो। कन्दर्प कैसे उज्जीवित होगा ? तो उसके लिए 'क्लीं', 'क्लीं—यह काम बीज है—

जगौ कलं बाम दृशां मनोहरं

यहाँ 'क' शब्द है, 'ल' शब्द है। बाम दृक् माने चतुर्थ इकार, चतुर्थस्वर है उसको काम कला कहते हैं तन्त्र शास्त्र में। 'जगौ कलं बाम दृशां—बाम दृक्-माने चतुर्थस्वर; क ल है ही है। क माने ? के माने कृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द मदनमोहन और ल माने राधारानी वृषभानुनन्दिनी नित्यनिकुंजेश्वरी और इ माने उनका परस्पर उत्कट अनुराग और बिन्दु (०) माने उस अनुराग से उनका परस्पर परिष्वंग श्याम तेज गौर तैज का परिष्वंग। गौर तेज

परस्पर जो परिष्वंग करते हैं, परस्पर एक-दूसरे में सम्मिलित हों इसका नाम 'क्लीं' काम बीज है कृष्ण का। कृष्ण का मंत्र है। कृष्ण का जो अष्टदशाक्षर मंत्र, षडक्षर मन्त्र उस सब में 'क्लीं' यह प्रधान बीज है। तो उसका यही अर्थ कि 'क' माने श्री कृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द मदनमोहन; 'ल' माने राधारानी वृषभानुनन्दिनी नित्य निकुंजेश्वरी; 'बाम दृक्' माने उनकी उत्कट उत्कण्ठा और उनकी उत्कट उत्कण्ठा से जो उनका परस्पर सम्मिलन, परस्पर परिरम्भण, परस्पर आलिंगन वही 'क्लीं'—काम बीज का अर्थ है। वह साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं। क्योंकि हम आगे वर्णन करेंगे कि कृष्ण है क्या ?"

तो सम्प्रयोगात्मक शृंगाररस समुद्र और विप्रलम्भात्मक शृंगार समुद्र-दो प्रकार का शृंगार होता है। दुनिया के सब रसों में शृंगार रस अङ्गी रस है और सब रस उसके अङ्ग है।

यह रस दो प्रकार का होता है—एक विप्रलम्भ दूसरा सम्भोग। माने ? जहाँ; जहाँ नायक नायिकाओं का सम्मिलन हो वह तो सम्भोगशृंगार और जहाँ, दो—एक-दूसरे से वियुक्त हो विप्रलम्भ शृंगार। दोनों का अपना-अपना महत्त्व और यहाँ सम्भोगशृंगार महा समुद्र और विप्रलम्भ शृंगार महासमुद्र दोनों का जो सार सर्वस्व है वही कृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द का स्वरूप है। कृष्णचन्द्र का स्वरूप ही है। इसलिये लिखा है शास्त्रों में 'निखिल रसामृत मूर्त्ति'। कृष्ण क्या है ? निखिल रसात्मक मूर्त्ति। निखिल रस। शृंगार रस, हास्य रस, करुणरस और अनेक प्रकार के रस हैं। नौ रस हैं नव रस—

'नव रसमिलितं वा केवलं वा कुमर्थ परमिह मुकुन्द भक्ति योगं वदन्ति।'

तो नव रस हैं। निखिल रसात्मक मूर्त्ति भगवान् श्यामसुन्दर मदनमोहन ब्रजेन्द्रनन्दन हैं; विशेष करके सब रसों का सार शृंगार रस। शृंगार रस में विप्रलम्भ शृंगार और सम्भोग शृंगार—दोनों शृंगार रस का समुद्र। और जैसे समुद्र का मन्थन करने से, समुद्र में से चन्द्रमा निकलता है, समुद्र में से चन्द्रमा निकलता है, ऐसे ही सम्भोगात्मक, विप्रलम्भात्मक उद्बुद्ध, उद्वेलित, उभयविध शृंगार रस—समुद्र के मन्थन से आविर्भूत जो निर्मल निष्कलंक पूर्णचन्द्र वही कृष्ण चन्द्र है। इसलिये उनका स्वरूप, हस्तारविन्द, पादारविन्द, मुखारविन्द, वदनारविन्द सबका सब शृंगाररस सार सर्वस्व है। और सबका सार अधरामृत अधरामृत, मुख चन्द्र का अधरामृत सबका सार। इसलिए वह अधरामृत वेणुछिद्रों में प्रविष्ट होकर के 'क्लीं'—इस कामबीज के रूप में प्रविष्ट हुआ उसको भगवान् ने बोया। बीच बोया। कहाँ बोया ? किसी स्निग्ध क्षेत्र में। कौन स्निग्ध क्षेत्र ? गोपांगनाओं का जो हृदय है वही स्निग्ध क्षेत्र है, वही इस बीज के बोने की जगह है। और बीज कैसे बोया जाता है जानते हो ? इधर के देशों में बांस—हल के पीछे एक बाँस लगा होता है, उसी बाँस में बीज डालता है। आगे-आगे हल चलाता चलता है और हल के साथ बाँस लगा दिया है और कोई औरत रहती जो उस बाँस में वह बीज डालती जाती है। क्योंकि उसमें बाँस में डाला हुआ बीज ठीक जहाँ पहुँचना चाहिये बीज को वहाँ पहुंच जाता है। बिना बाँस के तो इधर-उधर भी बीज फैल सकता है लेकिन बाँस जो हल के पीछे लगा रहता है; इधर नहीं होता है। वहाँ के हल में हल के पीछे एक बाँस लगा होता है; उसमें आगे-आगे हल चलाता है उसके साथ ही बगल में कोई औरत

बीज डालती चलती है। तो बाँस में डाला हुआ बीज ठीक स्निग्ध क्षेत्र में पहुँचता है। ऐसे ही भगवान् कृष्ण ने बाँस में बाँस की बन्सी में वह 'क्लीं' बीज को बोया। 'क्लीं' बीज बांस की बन्शी के द्वारा बोया। कहाँ पहुँचा ? ठीक जहाँ पहुँचना चाहिए वहाँ पहुँचा। गोपांगनाओं के जो निरावरण कर्ण कुहर हैं—गोपांगनाओं के निरावरण कर्ण कुहरों द्वारा, गोपांगनाओं के अन्तःकरण में वह 'क्लीं'—कामबीज पहुँचा। पहुँचने में देरी की बस। वह तो वहाँ, कन्दर्प तो सब जगह है। कौन-सा हृदय है जहाँ कन्दर्प नहीं ? कन्दर्प है क्योंकि भगवान् शंकर ने फिर वरदान दिया, जब भगवान् शंकर के कोपाग्नि में काम-कन्दर्प जल गया, भस्म हो गया तो उसकी पत्नी रति रोने लगी। रति विलाप करने लगी। रति के विलाप से भगवान् का हृदय पिघल गया। तो उन्होंने वरदान दिया कि तुम्हारा पति अब से अनंग होकर रहेगा। इसीलिये शास्त्रों में अनंग भी काम का नाम है। जैसे काम का काम नाम है, कन्दर्प नाम है ऐसे ही अनंग नाम है। भगवान् शंकर ने वरदान दिया कि अब से तुम्हारा पति अनंग होकर के सब में व्यापक रहेगा और अंग धारण करेगा तब, जब कृष्ण भगवान् का अवतार होगा और रुक्मणि के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में तुम्हारा पति का पुनर्जन्म होगा। तो प्रद्युम्न जो है काम के अवतार माने जाते हैं। प्रद्युम्न के जन्म से पहले-पहले तुम्हारा पति अनंग के रूप में सब जगह विराजमान रहेगा। तो इसलिये सब जगह है तो गोपांगनाओं के हृदय में भी कन्दर्प है। लेकिन जब 'क्लीं' काम बीज वहाँ पहुँचा तो कामबीज के वहाँ पहुंचते ही बस फिर वह अंकुरित होकर नालस्कन्ध-शाखा-उपशाखा—वह बिन्दु का सिन्धु बन गया। उनके भीतर तो बिन्दु पहुँचा। वह 'क्लीं' का कामबिन्दु। वह बिन्दु भावना के द्वारा-रस भावना के द्वारा। कोई बात आप छोटी-सी सुनें, कोई बात छोटी-सी सुनें और सुनकर मनन करें मन में विचार करें तो उसका बड़ा विशदरूप बन जाता है। तो बिन्दु का सिन्धु बन गया। काम का बिन्दु वह गोपांगनाओं के निरावरण कर्ण कुहरों द्वारा हृदय में प्रविष्ट होकर के भावना द्वारा सम्बन्धित होकर, परिवर्धित होकर और सिन्धु बनकर अन्तःकरण में, प्राणों में, रोम-रोम में—वह कृष्ण का अधरामृत; कृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द मदनमोहन का अधरामृत—।

कृष्ण क्या है ? सम्भोगात्मक, विप्रलम्भात्मक, उद्‌बुद्ध, उभयविध शृंगारस महासमुद्र से आविर्भूत निष्कलंक पूर्णचन्द्र है। वह निष्कलंक पूर्णचन्द के मुखचन्द्र में जो अधरामृत, वह अधरामृत 'क्लीं'—कामबीज के रूप में प्रगट होकर के, गोपांगनाओं के निरावरण कर्ण कुहरों के द्वारा अन्तःकरण , अन्तरात्मा में भरपूर हो करके उनके गोपांगनाओं के मुख चन्द्र में आया। उन्होंने वर्णन किया, वेणु गीत का उन्होंने वर्णन किया—'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः' यह गोपांगनाओं के शब्द हैं। तो वह क्या है ? वर्णन कोई ऐसा वर्णन नहीं है।। वर्णन यह है कि—उत्तम काव्य वह माना जाता है जिसमें कवि के हृदय का उद्‌गार हो। तुकबन्दी कविता नहीं, तुकबन्दी कविता नहीं। हृदय का भाव स्वयं उछ्छलित हो। जैसे प्याले में रस हो और हवा के झोंकों से छलक पड़ता है जैसे ही भावावेश में जो रसपूर्ण हृदय—जब उछ्छलित होता है तो वही शब्द-ब्रह्म का रूप धारण करके काव्य के रूप में प्रगट होता है।

बाल्मीकि रामयण आप देखो। वहां लिखा है—शोकः श्लोकत्वमागतः' शोक ही श्लोक बन गया। शोक तो अन्तःकरण की चीज है। शोक माने करुणारस। शोक माने करुण रस। तो करुण रस समुद्र जो महर्षि के हृदय में था तो क्या हुआ ? क्रौंच मर गया। क्रौंच मर गया। क्रौंच के मर जाने पर क्रौंची करुण क्रन्दन करने लगी। क्रौंची करुण क्रन्दन करने लगी, तो क्रौंची का करुण क्रन्दन सुनकर उसके मन में सीता का करुण क्रन्दन याद आया। राम भगवान् ने सीता को बनवास दे दिया तो राम के वियोग में सीता भी करुण क्रन्दन करती थीं ऐसे, जैसे क्रौंची करुण-क्रन्दन करती है। तो क्रौंची के करुण क्रन्दन से सीता का करुण क्रन्दन याद आया और वह करुणारस हृदय में भरा हुआ था उच्छलित होकर छलक पड़ा। रस छलक पड़ा। जो रस छलका वही श्लोक बन गया।

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्॥'

तो इस प्रकार से उनके हृदय में गोपांगनाओं ने भी कोई काव्य रचा नहीं किन्तु 'क्लीं' कामबीज उनके हृदय में जो बिन्दु पड़ा और भावना के द्वारा सिंधु बन गया, उनके अन्तःकरण, अन्तरात्मा में भरपूर हो गया। रोम-रोम में भरपूर हो गया, वह ही उनके मुखचन्द्र में आया। वहीं कण्ठ ताल्वादि अष्ट स्थानामासक्त आग्नेय वागिन्द्रिय से सम्पृक्त होकर शब्द ब्रह्म का रूप धारण करके और 'अक्षण्वतां फलमिंद न परं विदामः' या 'बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं, विभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालामृइन श्लोकों के रूप से वही शब्द आया। इस प्रसंग से गोपांगनाओं के अधर में कृष्ण का अधरामृत पहुँच गया। जो श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र में रहने वाला अधरामृत वह अधरामृत गोपांगनाओं के अधरों में पहुँच गया। इसलिए वह अधरामृत तीन तरह का वर्ण है। वल्लभाचार्य ने तीन प्रकार का अधरामृत कहा। एक देव भोग्या अधरसुधा। एक भगवद् भोग्या अधरसुधा, एक सर्वभोग्या अधरसुधा। तीन प्रकार का अधरसुधा श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी में वर्णन किया है तो देव भोग्या अधरसुधा तो वह जो हमने 'नाद' कहा। जो नादामृत बना और सरसी-सरोवरों में, कुमुद-कुमुदिनियों में, कमल-कमलनियों में, हंस, सारस-कारण्डव आदि विहंगमों में—सब में जाकर के सब में फिर भी कृष्णात्मता का प्रादुर्भाव किया। वह तो नादामृत की बात है। देवभोग्या अधरसुधा उसको कहते हैं। और भगवद् भोग्या अधरसुधा ? जो भगवान् के ही द्वारा भोग्य होगा। तो अपना अधरसुधा तो स्वयं भोग्य नहीं होता। अपना अधरसुधा स्वयं भोग्य नहीं होता। लेकिन इस प्रकार से भगवान का ही अधरसुधा जब गोपांगनाओं के मुखों में आ गयी वर्णन ब्याज से; वर्णन के प्रसंग से भगवान् के मंगलमय मुखचन्द्र की अधरसुधा, वह वेणुगीतामृत बनकर और गोपांगनाओं के हृदय में बिन्दु बनकर पहुँची। वही भावना द्वारा परिवर्धित हुई, सिन्धु बन गयी। अन्तःकरण अन्तरात्मा में भरपूर होकर वर्णन ब्याज से उनके मुखचन्द्र में आयी तो कृष्णचन्द्र के मुखचन्द्र की अधरसुधा, वह गोपांगनाओं के मुखचन्द्र में आ गयी। अब श्री कृष्ण सम्मिलन में श्री कृष्ण उस अधरसुधा का जो रसास्वादन करेंगे, वह स्वमुख की ही अधरसुधा इस रूप में भगवद् भोग्या कहलायी। सर्वभोग्या अधरसुधा

एक अलग है; उसकी व्याख्या अलग है। सर्वभोग्या अधरसुधा। इस-सब—इतने कहने का मतलब भगवान् आत्माराम हैं। आत्मा का रमण अपने में ही होता है। जैसे वेदान्ती आत्माराम हैं।

'आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूत गुणो हरिः॥'

ऐसे ही श्री कृष्ण आत्मा राम हैं। आत्मा क्या है ? बोले ! 'आत्माचराधिकाप्रोक्ता'। श्री कृष्ण की आत्मा राधिका। यह कैसे ? जैसे गंगाजल की आत्मा क्या है ? उसकी शीतलता, मधुरता, पवित्रता गंगाजल की आत्मा है। अमृत की आत्मा उसका माधुर्य। ऐसे ही श्री कृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द क्या है ? अचिन्त्य अनन्त परमानन्द सिन्धु। उसकी आत्मा क्या है ? माधुर्यसार सर्वस्व की अधिष्ठात्री राधारानी !—ऐं—माधुर्य ही तो आनन्द सिंधु की आत्मा है; जैसे गंगाजल की आत्मा शीतलता, मधुरता, पवित्रता; अमृत की आत्मा उसकी मिठास, तैसे ही अचिन्त्य, अनन्त परमानन्द सुधासिंधु कृष्ण की आत्मा माधुर्यसार सर्वस्व की अधिष्ठात्री राधारानी। इसलिये कहा 'आत्माचराधिका प्रोक्ता'। इसलिए सम्पूर्ण अणु-अणु, परमाणु-परमाणु, वृन्दावनधाम की वस्तुएं सब श्रीकृष्ण की आत्मा बन गयीं। माने ? राधरानी वृषभानुनन्दिनी के रूप में सबका प्रादुर्भाव हो गया।

इस भूमिका के साथ यह बात समझ में आयेगी कि श्रीकृष्ण ने गोपकन्याओं का वस्त्र क्यों स्पर्श किया ? निरावरण कृष्ण ने गोपकन्याओं के वस्त्रों को स्पर्श करके उनमें दिव्यता का प्रदुर्भाव किया। उस वस्त्र को जब उन्होंने धारण किया तो उनमें दिव्यता का प्रादुर्भाव किया। उस वस्त्र को जब उन्होंने धारण किया तो उनमें पहले ही ब्रह्मता थी। अब विशेष करके ब्रहाता का अविर्भाव हुआ। अब इसके आगे भी एक कोटि चलो। आमतौर पर दिव्यता लाने के लिए कर्मकाण्ड तो है ही 'महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः'। यज्ञों के द्वारा, महायज्ञों के द्वारा साधक की आत्मा ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनती है। विशेषकर के तपस्या से—'तपोहिदुरतिक्रमम्'। तप की बड़ी महिमा है। तप के द्वारा। पहले तप की आदत बहुत थी । आजकल तप बहुत कम हो गया शवरी ने तप का वर्णन किया है महाराज रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् से। वाल्मीकिय रामायण में लिखा है कि यहाँ भगवन् हमारे गुरुदेव मतंग महर्षि तप करते-करते-अनशन। तप में अनशन बड़ा आता है। 'अनशन -तपोनामनशनात् परम्' अनशन से बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं। अनशन सबसे बड़ा तप है। आज अनशन न बने तो एकादशीव्रत तो करना चाहिये पक्का। एकादशी माने ? निर्जल। निर्जल हो तो उत्तम। फिर पराकव्रत करते हैं बारह दिन का निर्जलव्रत। या जल ले लेते हैं बाकी तो उसमें लिखा है कि जिस समय मतंग महर्षि तप करते थे उनको स्नान करने की इच्छा हुयी, लेकिन शरीर इतना समर्थ नहीं था कि उठें स्नान के लिये। तो फिर दिव्य तीर्थ वहीं आ गये उनको स्नान कराने के लिए, दिव्य तीर्थ सब वहीं आ गये। फिर उनको कुछ पारणा करने की इच्छा हुयी कि कुछ व्रत की पारणा करें। तो फिर ऊपर फल तो था लेकिन उठने की सामर्थ्य नहीं थी तो वृक्षों की डालें सब नीचे हो गयीं उनके पास आ गयीं। तप की महिमा बड़ी अद्भुत

है। यह सब पुराने जमाने में तप बहुत चलता था। चान्द्रायण, व्रत, कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत, पराक्व्रत यही सब बहुत-बहुत व्रत हैं। तीर्थ यात्रा में भी कुछ तप हो ही जाता है। कुछ कष्ट हो ही जाता है। भूख भी, प्यास भी, श्रान्ति भी—यह सब तप होता है। परमात्मा भी तप करते हैं 'यस्य ज्ञानमयंतपः'। पर उनका तप है ज्ञान ही, तप है ज्ञान। ज्ञान ही तप है उनका—'ऐं'—तप माने 'तप सन्तापे'—संताप जिसमें हो उसका नाम तप है। तो ईश्वर का सन्ताप क्या ? 'ज्ञान'। यह कैसे ? हर एक को नहीं मालूम पड़ता। योगी हैं योगी—मकड़ी का जाला कितना सूक्ष्म होता है पर आँख में वही मकड़ी का जाला बहुत कड़कता है—ऐं ! और अंगों में लाठी भी एक बार बर्छी-भाला भी लग जाय तो भी इतना संताप नहीं होता। जितना आँखमें मकड़ी का जाला। योगसूत्र कहता है—

'अक्षपात्रकल्पं हि योगिनामुचित्तम्'

योगियों का चित्त अक्षपात्र के तुल्य है। जैसे नेत्रपात्र बड़ा कोमल होता है ऐसा ही योगियों का चित्त बड़ा कोमल होता हैं उसमें थोड़ा-सा भी विक्षेप, उद्वेग करता है। तो परमात्मा तो योगियों का योगी है। 'स सर्वेषामपि गुरुःकालेनानवच्छेदात्' बड़े-बड़े योगियों का भी परमगुरु परमात्मा परमेश्वर। तो उसने जब सृष्टि रचने का विचार किया, तो विचार होगया—यही बस क्षोभ उसको हुआ। जो निर्विकल्प अवस्था में था। निर्विकल्प ज्ञान, हलचल विहीन ज्ञान, निर्विकल्प विज्ञान, उसकी अपेक्षा विचार आया वही तप हो गया। जैसे हम लोग चान्द्रायण करें, हम लोग एकादशीव्रत निर्जल करें, वैसे ही उनके मन में विचार आ गया, तो इसी से सन्ताप काफी हो गया। यहाँ तक लिखा है उपनिषदों में कि परमेश्वर ने संकल्प किया कि 'एकोऽहम् बहुस्याम'—यह तप हुआ। तप से भगवान् के शरीर में पसीना आ गया। उसी पसने से समुद्र बन गया। कारण समुद्र जो बना, कारण समुद्र कहाँ से बना? एक 'क्षोहश्रामक' उपनिषद् है। सो अश्रामक परमात्मा श्रान्त हुआ तप करते-करते उसकी श्रान्ति से जो स्वेद निकला वह स्वेद ही कारण समुद्र है। तो इन दृष्टियों से फिर एक वचन है ऋग्वेद का। ऋग्वेद का वचन है—'अतप्त तनुर्नतदासो श्नुते दिवम्' जिसका तनु तप्त नहीं है, अतप्त तनु वह कच्चा रहता है कच्चा। अतप्त तनु। इसलिये वह परब्रह्म के रस के अनुभव का अधिकारी नहीं इसके भिन्न-भिन्न अर्थ लोग करते हैं। स्मार्त लोग अर्थ करते हैं कि चान्द्रायण तप, कृच्छ, पराक् आदि व्रतों के द्वारा जिसकी अन्तरात्मा परिपक्व नहीं है वह अपक्व है। रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य अर्थ करते हैं कि तप्तमुद्रा शंख, चक्र की तप्तमुद्रा से जिसका शरीर तप्त नहीं है वह अतप्त तनु है। और वह आम है अपरिपक्व है, वह परब्रह्मतत्त्व को नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसे भिन्न-भिन्न लोग अर्थ करते हैं। हम यहाँ अर्थ करते हैं—हमारी दृष्टि में इसका अर्थ यह है कि भगवद् विरह जन्य-तीव्रता से भगवद् विरह जन्य तीव्रताप से जिसकी अन्तरात्मा तप्त नहीं है। भगवान् के वियोग का सन्ताप जिसको नहीं—ऐं—भगवान् के वियोग का सन्ताप किसको होगा ? जिसको भगवान् के संयोग का सुख अनुभूत हुआ हो। जो भगवान् के संयोग का सुख ही नहीं जानता वह भगवान् से वियुक्त हो रहा है कोई ताप है कहां ताप है ? लेकिन जिनको भगवद् संयोग का सुख मिला, गोपांगनाओं को

भगवत्संयोग का सुख मिला—**'गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्द दर्शने। क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्।'** भगवान् के मंगलमय मुख चन्द्र के दर्शन का सौभाग्य। भगवान् के मंगलमय अंग के दिव्य आभा प्रभा, कान्ति अवलोकन का सौभाग्य यह उनको प्राप्त हुआ है। इसलिये भगवत्-संयोग सुख का अनुभव करने के अनन्तर कहते हैं—आतप का सन्ताप जिसको नहीं मिला वह छाया का सुख भी नहीं जानता। छाया का सुख उसको होता है आतप का सन्ताप जिसे व्यापता है। ऐसे ही जिसको भगवद् विरह जन्य तीव्र ताप की अनुभूति नहीं उसको भगवद्-संयोग सुख की अनुभूति नहीं।

धान के खेत में एक होता है सारस पक्षी बड़ा ऊंचा, लम्बा सारस। जोड़े होते हैं यह। तो सारस, उसमें जो मादा होती है उसका नाम होता है लक्ष्मणा। सारस और लक्ष्मणा। तो लक्ष्मणा ने एक दिन चक्रवाकी को कहा कि चक्रवाकी चकवा-चकवी। चक्रवाक् चक्रवाकी दिन को तो पास-पास रहते हैं और रात को एक नदी के इस पार तो एक नदी के उस पार। एक सरोवर के इस पार एक सरोवर के उस पार। तो सारस पत्नी लक्ष्मणा ने कहा सखी चक्रवाकी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कठोर है। भादव की अमावस्या की अन्धेरी रात, घन और घटा उमड़ रही है, दामिनी दमक रही है शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रहा है। दादुरधुनि चारों ओर सुहानी लग रही है—पर तुम्हारे प्रियतम नदी के उस पार और तुम नदी के इस पार। तुम जीवित कैसे रहती हो। तुम कैसे जीवित रहती हो सूखी-सूखी आँखों को लेकर प्रियतम के पास फिर पहुँच जाती हो। चक्रवाकी ने कहा सखि लक्ष्मणे! तुम ठीक कहती हो। ठीक कहती हो, हमारा वज्र से भी ज्यादा कठोर हृदय, भादों की अमावस्या की अन्धियारी रात, घनघोर घटा उमड़ रही, दामिनी दमक रही है, दादुरधुनि चारों ओर सुहावनी लग रही है और उस समय प्रियतम हमारे उस पार और हम नदी के इस पार। यह रात्रि, यह काल रात्रि के तुल्य हम कैसे व्यतीत करती हैं हमारा हृदय वज्र है' किन्तु सखि ! इतने ताप के पश्चात् प्रियतम के सम्मिलन का जो सुख होता है, तुम उससे परिचित नहीं। नहीं हो तुम उस सुख से परिचित नहीं, क्योंकि तुम तो मर जाती हो। वियोग हुआ मर गयी, यह पलायन है। हित हरिवंश स्वामी के मतानुसार मौत के गोद में जाकर विश्राम लेना यह प्रेम मार्ग से पलायन है। प्रेम मार्ग बड़ा कठिन है। एक भक्त कहता है कि **'प्रेमपन्थ अति कठिन है सबसे निबहत नाहि। चढ़ि के मोम तुरङ्ग पै चलिबो पावक मांहि ॥'** मोम के तुरंग पर चढ़कर पावक में चलना तो अति कठिन है सबसे निबहत नाहि। चढ़ि के मोम तुरंग पै चलिबो पावक मांहि'। इसमें विश्राम लेना, यह पलायन है; मौत की गोद में चले जाना पलायन है; मूर्छा में चला पलायन है। नहीं। सावधान रहो। विरह जन्य तीव्र ताप का अनुभव करो उसके पश्चात् पुनः प्रियतम के सम्मिलन का लोकोत्तर सुख अनुभव तब हो। तो मैं कह रहा था, जो ऋग्वेद का मन्त्र है 'अतप्ततनुर्नतदासोऽश्नुते'। अतप्ततनु आम हैं। माने ? भगवद्विरहजन्य तीव्रताप, तीव्रताप के द्वारा जिसका तनु तप्त नहीं है, वह अतप्ततनु है। यह प्रेम तत्त्व का रस अनुभव नहीं कर सकता।

अब आइये प्रसंग पर। दण्डकवन के निवासी ऋषि भगवद्दर्शन के उत्कण्ठित। रामचन्द्र

राघवेन्द्र के रूप में परात्पर परब्रह्म प्रभु का दर्शन उनको हुआ। उन्होंने इच्छा किया हम आपका आलिंगन भी करें। भगवान् ने कहा कि यह हमारा मर्यादा पुरुषोत्तम रूप है इसको आलिंगन नहीं कर सकते तुम। किन्तु तुम कृष्णावतार में गोप कन्या बनोगे; वह गोप कन्या बने। अब कात्यायिनी आदि व्रत किया। भूशुद्धि, भूतशुद्धि तो उस समय भी करते रहे जिस समय दण्डक बनवासी थे, उस समय भूशुद्धि भूतशुद्धि, प्राण प्रतिष्ठा आदि सब कुछ करते ही रहे। उसी के फलस्वरूप तो रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् का दर्शन हुआ। अब उत्कट उत्कण्ठा की वृद्धि चलती रही। अन्त में श्री कृष्ण ने उनके वस्त्रों को स्पर्श कर दिया, उनमें दिव्यता आ गयी। श्री कृष्ण-अंग-संस्पृष्ट वस्त्रों को परिधान करके उनमें अलौकिकता, रसात्मकता, दिव्यता आ गयी। प्राकृतता भौतिकता मिट गयी। कुछ-कुछ बाकी है, पूरी नहीं मिटी। जब कृष्ण ने बन्शी बजायी रासलीला के दिन, पूर्णमासी की रात्रि, आश्विन शुक्ल पूर्णमासी उसी को शारदी-शारदनवरात्र के अन्त में बन्शी बजायी। बन्शी सुनकर सब गोपकन्याएँ गोपांगनाएँ, विभिन्न-विभिन्न भाव कोई उनमें श्रुतिरूपा थी, कोई उनमें ऋषिरूपा थी, कोई उनमें अनन्यपूर्विका श्रुतियाँ थीं कोई अन्यपूर्विका। यह सब बड़े अवान्तर भेद हैं। अनन्यपूर्विका श्रुतियां अलग है। 'तत्त्वमसि', 'अयमात्माब्रह्म' इत्यादि श्रुतियाँ अनन्यपूर्विका जो सीधे-सीधे ब्रह्म कर प्रतिपादन करती हैं; अनन्यपूर्विका श्रुतियाँ वह हैं जो इन्द्र का प्रतिपादन करने वाली वरुण का प्रतिपादन करने वाली अनन्यपूर्विका। यही स्वकीया, परकीया के भी भेद हैं। जो साक्षात् श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द का ही प्रतिपादन करती हैं वह उनकी स्वकीया और जो पहले इन्द्र का प्रतिपादन करके कुबेर का प्रतिपादन करके इन्द्रोऽसितस्य राजा श्रोणं ते सदनं कृणोमि धृत्स्व धाराया सुसेवनं परिकल्पयामि तस्मिन सीद अमृतेस्वप्रतिष्ठित इत्यादि वेद मंत्र जो पुरोडाश का प्रतिपादन करते हैं यह अन्यपूर्वक है, यह परकीया कोटि में गिनी जा सकती है। इस प्रकार से बहुत प्रकार की श्रुतियाँ है वह सब गोपांगनाएँ बहुत-सी सब निकल करके श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द से निर्गत वेणु गीतामृत का रसास्वादन करके, श्री कृष्ण का संकेत समझ करके वह श्री कृष्ण के पास चलीं। उनके बन्धुओं ने रोक लिया किसी के पतियों ने रोक लिया और उनको कपाट के भीतर बन्द कर लिया। कोठरी में बन्द कर दिया। कहाँ जाती हो ! नहीं जाओगी। उनका वर्णन है इसी रासपंचाध्यायी में।

'अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्ध विनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलित लोचनाः॥'

'अन्तर्गृहगता' घर के भीतर रोक ली गयी कुछ गोपांगनाएँ।

'अलब्धविनिर्गमाः'—अनेक प्रकार का प्रयत्न करने पर भी वह घेर से न निकल पायीं। अब क्या करें ? तो आदत थी ध्यान करने की। दण्डक वन के निवासी रूप में भी ध्यान ही करते थे। ध्यान का अभ्यास था। तो 'अन्तर्गृहगताः—लोचनाः'। आँख मीच लिया। आँख मीच करके श्री कृष्ण का ध्यान करने लगीं—'अन्तर्गृहगताः—लोचनाः।' आँख मीचकर ध्यान करने लगीं। अब यहाँ देखो। ध्यान करने लगीं यहाँ तक तो बात ठीक, आगे—

"दुःसहप्रेष्ठ विरहतीव्रतापधुताशुभाः। ध्यान प्राप्ताच्युताश्लेश निर्वृत्याक्षीण मङ्गलाः।

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि सङ्गताः। जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बन्धनाः॥'' यह रासपंचाध्यायी का वचन है। तो कहते हैं वह देव कन्याएँ श्री कृष्ण का ध्यान करने लगीं। ध्यान करते समय यह हुआ माने ! प्रियतम का विरह दुरुह हो गया—दुःसह। असल में तभी प्रभु मिलेंगे जब उनका विरह दुःसह होगा। जब तक सहन होता है विरह तब तक काहे को मिलेंगे? जब तक उनका विरह दुःरुह हो जाय यही ऊंचे अधिकार की बात है। 'दुःसह प्रेष्ठ विरहः'—दुःसह जो प्रेष्ठ विरह उस विरह से जो तीव्रताप हुआ—तीव्रताप। उस तीव्रताप के द्वारा उनके सब अशुभ मिट गये। भगवत्प्राप्ति में कौन बाधक है ? पुण्य-पाप। पाप-बाधक है ? पुण्य बाधक है। कहा ! पापपुण्य दोनों कट जायं तो परब्रह्म की प्राप्ति सरलता से हो जाय। पाप कैसे कटा ? बोले—'दुःसह प्रेष्ठ विरह तीव्रतापधुताशुभाः'। दुःसह जो प्रेष्ठ विरह, प्राणनाथ प्रियतम मदनमोहन श्याम सुन्दर श्री कृष्णचन्द का जो दुःसह विरह, दुःसह वियोग है उस वियोग जनित जो तीव्रताप है, उस तीव्रताप से उनके सब पाप कट गये। और उसके बाद—'ध्यानप्राप्ताच्युता'—ध्यान में, अच्युत भगवान् मदनमोहन श्यामसुन्दर श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द का ध्यान में दर्शन हुआ और ध्यान में उनका आलिंगन किया, ध्यान में ही उनका परिरम्भण किया, ध्यान के परिरम्भण से जो उद्रिक्त, आनन्दित महासमुद्र, उसके द्वारा उनका सारा पुण्य खत्म हो गया। तो पुण्य-पाप दोनों कट गये। अब सीधे-सीधे परमात्मा भगवान् श्री कृष्ण को प्राप्त हो गयीं। एक अर्थ इसका यह। यह अर्थ कमजोर है—दूसरा अर्थ सुनो। इसका अर्थ यह है। 'दुःसह प्रेष्ठ विरह तीव्रताप' पहले अर्थ में अरुचि यों है कि भगवान् के विरह से पाप तो कटता है—यह तो ठीक है; लेकिन ध्यान प्राप्त अच्युत के आलिंगन से जो आनन्दोद्रेक हुआ उस आनन्दोद्रेक से पुण्य नहीं कट सकता। क्योंकि पुण्य का इस आनन्द से विरोध ही नहीं है। देखो भाई ! भगवन्नाम से पाप तो कट जाता है पर पुण्य नहीं कटता। ध्यान प्राप्त अच्युत के आलिंगन से जो आनन्दोद्रेक हुआ, उस आनन्दोद्रेक से पुण्य कैसे कट गया ? पुण्य तो नहीं कट सकता; तो फिर क्या अर्थ है ? इसका अर्थ यह है कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अनन्त-अनन्त प्राणियों के अनन्त-अनन्त पाप सब इकट्ठे हो गये और उन्होंने सोचा इस ब्रजांगना को अपने श्यामसुन्दर मदन मोहन ब्रजेन्द्र नन्दन के विरह जन्य-तीव्रताप से जो सन्ताप हुआ हम सब अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त-अनन्त प्राणियों के अनन्त-अनन्त जन्म-जन्मातरों के पाप मिलकर किसी को दुःख देना चाहें तो क्या इतना दुःख दे सकते हैं ? नहीं दे सकते इतना दुःख। अर्थात्! यह समझ करके, अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्ड के अनन्त-अनन्त प्राणियों के अनन्त-अनन्त पाप इकट्ठे होकर सोचने लगे कि भगवत् विरह जन्य तीव्रताप में जो इस गोपांगना को सन्ताप हुआ—उतना सन्ताप हम अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त-अनन्त प्राणियों के अनम्त-अनन्त पाप भी मिलकर किसी को नहीं दे सकते—यह समझ करके कांप उठे। यहाँ—'दुःसह प्रेष्ठ विरह तीव्रतापधुताशुभाः'। जितने भी कृमि हैं दिव्य देह में, भगवद्पद प्राप्ति योग्य दिव्य देह की—एक तो रज, तम दूर हो जाय, पाप सब मिट जाए और भौतिकता, प्राकृतता, जड़ता, खत्म हो जाये और अलौकिकता, अप्राकृतता, रसात्मकता, दिव्यता आ जाये। तो विरह जनित

तीव्रताप से भौतिकता का सर्वथा लोप हुआ। जड़ता, भौतिकता, प्राकृतता का विलोप हुआ और ध्यान प्राप्त अच्युत का आश्लेष से आलिंगन से जो दिव्य देह है, दिव्य देह की जो अलौकिकता, अप्राकृतता, रसात्मकता वह परमपरितोष प्राप्त हुई। यह इस का अर्थ है। तो—'दुःसह प्रेष्ठ विरह तीव्रतापधुताशुभाः। ध्यान प्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्याक्षीणं मङ्गलाः॥' वह सब भगवान् को प्राप्त हो गयीं। सब गोपांगनाओं से पहले से पहुँच गयी। शरीर इनका जहां का तहाँ पड़ा रह गया और। इनका दिव्य देह—उसकी प्राकृतता, लौकिकता, भौतिकता बिल्कुल मिट गयी, अलौकिकता, अप्राकृतता दिव्यता का उसमें प्रादुर्भाव हो गया और वह साक्षात् भगवान् परमात्मा श्री कृष्ण चन्द्र के पास पहुँच गयीं।

अब उस बात को ध्यान दें जो हमने कहा। इस भौतिक देह से भगवान् का स्पर्श नहीं होगा क्योंकि 'वह' अभौतिक है। अभौतिक भगवान् को भौतिक हाथ से कैसे छुवेंगे? अभौतिक भगवान् को भौतिक आँख से कैसे देखेंगे ? भौतिक रसना से अभौतिक भगवान् के मुखचन्द्र के अधरामृत का रसास्वादन कैसे करेंगे ? भौतिक घ्राण से अभौतिक भगवान् के पादारविन्द के सौगन्ध्यामृत का रसास्वादन कैसे होगा ? इसलिये-इसलिये इनमें सबमें अभौतिकता आनी है, रसात्मकता आनी है—'देवोभूत्वा देवानूयजेत्'। देव होकर देव की पूजा करो। जब देव बन गये, भगवत्पद-प्राप्ति के योग्य बन गये—'हायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।' इनकातनु ब्राह्मीतनु बन गयी। इसलिये उन ही परमात्मा के पास पहुँच गये। तमेवपरमात्मानम्।

बोले यह जार है जार। यह तो कृष्ण को जार कहती थीं जार। जार माने उपपति। किसी भी स्त्री का अपना विवाहित पति तो मुख्य पति और विवाहित पति से भिन्न किसी का ससंर्ग करना यह है औपपत्य। उपपति का सम्बन्ध है उसको जार कहते हैं जार। जार का अर्थ क्या ? लौकिक अर्थ यह है जो धर्म-कर्म को जलाय दे, पुण्य को जलाय दे—वह जार जरयति—'जरयति पुण्यम् जरयति सुखम् जरयति परलोकम्-इति जारः।' साध्वी सती पतिव्रता पति का परलोक जलाकर नष्ट कर दे पुण्य जलाकर नष्ट कर दे—ऐसे उपपति को जार कहते हैं। भगवान् भी जार हैं। भगवान् भी जार हैं, क्योंकि उन गोपांगनाओं के विवाहित पति नहीं—यद्यपि एक प्रकार से विवाहित पति भी थे विवाहित पति भी थे। कैसे? वह भी सुन लो जिस समय ब्रह्मा ने सब ग्वाल बालों को हरण कर लिया। ब्रह्मा ने ग्वाल बालों का हरण का लिया और बछड़ों का हरण कर लिया, उस समय श्री कृष्ण परमात्मा अपने आप ग्वाल बाल बन गये और सब बछड़े बन गये। ब्रज के जितने बछड़े वह सब कृष्ण चन्द्र के परमानन्द कन्द मदन मोहन बन गये और जितने ग्वाल-बाल को ब्रह्मा ने हरण कर रखा है भगवान श्री कृष्ण सब ग्वाल वन गये। और एक वर्ष—एक वर्ष कृष्ण ही ग्वाल-बाल बने रहे। उस वर्ष में जो शादियां हुयी किसी भी ग्वालबाल की जो शादी वह सब कृष्ण की हुई, क्योंकि वह कृष्ण ही तो सब ग्वाल बाल थे। असली ग्वाल तो ब्रह्मा की माया में किसी कन्दरा में छिपे हुये थे। इस समय तो कृष्ण ही परमात्मा सब ग्वाल बाल बने थे इसलिये जो हमने पहले भी कहा था कि सब गोपकन्याओं के माता पिता चाहते थे श्री कृष्ण के

साथ उन कन्याओं का विवाह कर दें। या जो कोई ज्योतिषी जी बतलाएँ तब करें। तो गर्गाचार्य महाराज पधार आये। गर्गाचार्य जी से पूछा तो कहा। भय्या! शादी बनती नहीं। शादी बनती नहीं। यदि करोगे तो सौ वर्ष का वियोग तुमको कृष्ण का होगा। तो लोगों का संकल्प बदल गया। लोगों ने कहा कि विवाह इनका कर दो बच्चियों का तो कर दिया। उसी समय कृष्ण सब ग्वाल वाल थे। ब्रह्मा ने ग्वाल बालों का हरण कर लिया। बछड़ों का हरण कर लिया था। श्री कृष्ण ही सब ग्वाल बाल थे सब बछड़े थे। उस साल की जो शादी थी सब कृष्ण ही के साथ हुयी। इसलिये श्री कृष्ण की स्वकीया होते हुए ये भी वे परकीया। स्वकीया होते हुये भी परकीया और परकीया होते हुये भी कृष्ण की स्वकीया। तो इस ढंग से भगवान् कृष्ण जार हैं, पर इस जार का क्या अर्थ है? यह जार का अर्थ है –'जरयति–अविद्याम्'–इस जार का अर्थ है? जीव की अविद्या को जो जराय दे (जला दे) वह है जार,' जरयति पञ्चकोश' भागवत में एक श्लोक है–'अनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धेर्गरीयसी, जरयत्याशु या कोशं' निगीर्ण मनलोयथा'। अनिमित्ता जो भागवती भक्ति है, माने? निष्काम। निष्काम जो भगवान् की भक्ति है वह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्द मय आदि पंचकोशों को जलाकर भस्म कर देती है।–'जरयति'–अनिमित्ता भागवती भक्ति सिद्धेर्गरीयसी–सिद्धि में भी गरीयसी है, मुक्ति से भी श्रेष्ठ है। यह क्या करती है?

''जरयत्यासु या कोशंनिगीर्ण मनलोयथा–जैसे खाये पीये को जठराग्नि जलाकर भस्म कर देती है, ऐसे ही अनिमित्ता भागवती भक्ति जितने भर भी कोश हैं–मातृजकोश पितृजकोश, अन्नमयादिक कोश–सबको जलाकर के विशुद्ध कर देती है। भगवान् भी जार है जो अविद्या को जलाकर नष्ट करते हैं, जीवों के कोशों को जलाकर नष्ट करते हैं। इसलिये भगवान् भी जार हैं। जो उस जार का अर्थ दूसरा है और इस जार का अर्थ दूसरा है। हाँ तो बोलो फिर कैसे यह परमात्मा को प्राप्त हो गयी तो' तो इसका उत्तर दिया है श्रीधरस्वामी ने। कहते हैं भाई! एक बात सोचो'जारबुद्ध्यापिसङ्गता' जार बुद्धि है–कृष्ण जार नहीं। जार बुद्धि से कृष्ण को प्राप्त किया। इसका मतलब क्या है? मतलब यह है कि किसी प्राणी को दीपक की जरूरत हुयी। दीपक की जरूरत हुयी। दीपक ढूंढ रहा है। दीया। और किसी ने कोठरी में चिन्तामणि रखी थी–चिन्तामणि। दीया नहीं। दीपक बुद्धि से वह प्रवृत्त हुआ, जाना दीपक है उसको दीपक की जरूरत थी और चिन्तामणि थी घर में तो चिन्तामणि की ओर दीपक, बुद्धि से प्रवृत्ति हुआ तो मिलेगा क्या? वहां दीपक मिलेगा। कि चिन्तामणि मिलेगी। दीपक तो है ही नहीं। दीपक क्या मिलेगा। मिलेगी चिन्तामणि। ऐसे ही जार बुद्धि से परमात्मा में प्रवृत्त, जार बुद्धि से किसी जार में प्रवृत्त होती तो गड़बड़ होती–ऐ पर यहाँ तो दीपक बुद्धि से चिन्तामणि में प्रवृत्ति हुयी तो चिन्तामणि मिलती है–दीपक नहीं मिलता। ऐसे ही जार बुद्धि से परमात्मा में प्रवृत्ति हुयी इसलिये वहीं परमात्मा मिले। जार नहीं मिला। इसीलिये **'तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्यापि सङ्गता'**–ही जार बुद्धि से उसी परमात्मा को प्राप्त होकर जहुर्गुणमयदेहं–गुण मय शरीर को त्याग दिया। शरीर तो गुणमय है। रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण का परिणाम–भौतिक देह। इसलिये उस गुणमय देह को–'सद्यः–गुणमय देह का

परित्याग करके जार बुद्धि से भी उसी परात्पर परब्रह्म परमेश्वर को गोपांगना प्राप्त हो गयी। यह स्थिति है। इस दृष्टि से रासलीला में स्पष्ट है कि भगवान् को वही प्राप्त कर सकेगा। वही गोपांगना रासलीला में सम्मिलित हुयी थी, जिनका देह भौतिक नहीं, प्राकृत नहीं, पार्थिव नहीं। जिनका अलौकिक रसात्मक, अप्राकृत देह। जैसा कृष्ण! जैसा कृष्ण अप्राकृत, रसात्मक परब्रह्म ऐसे ही अप्राकृत, रसात्मक, परब्रह्म स्वरूपा गोपांगना हैं—उन्हीं की यह रासलीला है।

एक बात और भी समझ लेना। वही प्रसंगानुसार यह है। यह भागवत की कथा है कि एक दिन एकादशीव्रत रहे नन्दबाबा, नन्दबाबा एकादशीव्रत रहे। दूसरे दिन द्वादशी थोड़ी थी। थोड़ी थी द्वादशी इसलिये जल्दी उठकर यमुना नहाने चले गये ताकि द्वादशी में पारणा हो जाय। द्वादशी की पारणा की दृष्टि से जल्दी चले गये यमुना नहाने। वहां वरुण के दूतों ने नन्दबाबा को पकड़ लिया। पकड़कर ले गये वरुण जी के पास। ग्वालबाल नन्द को न देखकर बड़े व्याकुल हुए। कृष्ण से कहा तो कृष्ण भगवान् उसी समय वरुणलोक गये। वरुण ने देखा कृष्ण को बड़ा सम्मान किया, पूजा किया, और बड़े सादर, ससम्मान नन्दबाबा को लौटा दिया। नन्दबाबा ने आकर के वालबालों में, बड़े-बूढ़ों में, गोपों में सब चर्चा की कि 'अरे भय्याओ! यह तो कृष्ण बड़ा है 'कहा'—हां! हां—गर्गाचार्य जी भी तो आये थे जब नाम धरने के लिये तो उन्होंने भी कहा था—यह तो—'तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायण समोगुणैः'—यह तो नारायण है, परमात्मा है पर माया संसार की ऐसी कि बार-बार सुनने पर भी भूल जाते हैं। बार-बार सुनते हैं कि श्री कृष्ण परब्रह्म है परात्पर परब्रह्म है, पर भूल जाते हैं। तो जिस समय नन्दबाबा ने वरुणलोक की हाल बतायी वृद्धगोपों में तो उन्होंने कहा भाई! श्री कृष्ण तो साक्षात् परब्रह्म है। तो इसलिये कृष्ण से कहो कि हमको तो जो ब्रह्मानन्द का अनन्त आनन्द है, वह मिले। ब्रह्मानन्द का अनन्त आनन्द मिले। सब गोपों ने मिलकर कृष्ण से कहा कि आपका जो वेदान्त-वेद्य अखण्ड, अनन्त सच्चिदानन्द घन पर ब्रह्मस्वरूप है वह हम अनुभव करें। तोसबको भगवान् ने अपनी योग माया के बल से, सत्यसंकल्प भगवान् हैं उनके सत्यसंकल्प मात्र से सारे प्राणी एक दम प्रपंचातीत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंतत्त्व, महतत्त्व, पंचतन्मात्रा, रजोगुण, तमोगुण सत्वगुण इससे ऊपर उठकर परात्पर पर ब्रह्म भाव को सब प्राप्त हो गये। वहाँ सब घबराये कि श्री कृष्ण तो नहीं है। श्री कृष्ण बिना सब बड़े घबराये। दूसरी बात अनुभव की बात। नीम का कीड़ा उसको मिसरी के पर्वत पर ले जाओ खड़ा कर दो। वह नीम का कीड़ा कहेगा भाई हमारा नीम का स्वाद खोया। तैसे ही विषय सुख के जो रसिक हैं उनको ब्रह्मानन्द का सुख फीका है। कई लोग पूछते हैं महाराज आपके निर्गुण, निराकार, निर्विकार मोक्ष में बनारसी लंगड़ा आम मिलता है कि नहीं मिलता? कि नहीं मिलता? हमने कहा पागल हुए थे क्या? वहाँ लगड़ा आम कहाँ से मिलेगा? तब उन्होंने कहा अच्छा तो महाराज हमको यह बतलाईये कि परब्रह्म मोक्ष में कान्ता कटाक्ष? वहां कहाँ? तो फिर बालकों का कल भाषण? कहा—कुछ नहीं। बोले। क्या करेंगे ऐसे मोक्ष का जहाँ बनारसी लंगड़ा आम नहीं हुआ, जहाँ कान्ता

कटाक्ष नहीं हुआ, जहाँ बालकों का कल भाषण नहीं हुआ, ऐसा मोक्ष क्या लें?

तो यह स्थिति। नीम का कीड़ा नीम के रस से परिचित है मिश्री के स्वाद की बात उसके दिमाग में आती नहीं, ऐसे ही निर्विषय सुख, जो ब्रह्म का निर्विषय सुख। लेकिन निर्विषय सुख ऊंचा। एक दिन इन्द्र को नींद नहीं आयी। इन्द्र को नींद नहीं आयी तो वैद्य जी हैं उनके अश्विनी कुमार। वैद्य जी आये। कहा नींद नहीं आ रही है। अश्विनी कुमार ने कहा 'इन्द्र देव नींद किसी गरीब को आये तो ठीक है तुमको क्या जरूरत है नींद की, तुम्हारे यहाँ अमृत कुण्ड है पीयो, नन्दनवन का आराम लो, कल्पवृक्ष का स्वाद लो, चिन्तामणि का आनन्द लो, रम्भा उर्वशी, शची आदि दिव्याङ्गनायें हैं उनका रसास्वादन करो—तुम नींद का क्या करोगे? तो इन्द्र ने कहा 'महाराज वैद्य जी यह सब चूल्हे में जाय। नींद बिना न तो कल्पवृक्ष अच्छा लगे, न चिन्तामणि अच्छी लगे, न यह रम्भा, उर्वशी, शची अच्छी लगे। नींद विना यह कुछ नहीं। यहाँ तक कि भगवान विष्णु भी लक्ष्मी का आनन्द छोड़कर खुर्राटा लेते हैं। इस समय तो शायद जग गये हैं। कार्तिक शुक्ला एकादशी को जगते विष्णु सोते कब हैं? अषाढ़ शुक्ला एकादशी को सोते हैं। देवशयनी से लेकर देवोत्थानी तक। और जो बड़ा, ऊंचा है उतना ज्यादा सोता है, ब्रह्मा कितना सोता है? एक हजार चतुर्युगी का दिन और हजार चतुर्युगी का सोना। और विष्णु की उससे भी लम्बी नींद और शिवजी कि उससे भी लम्बी नींद। तो नींद में क्या? वहाँ ब्रह्मरस मिलता है। कौन ब्रह्म? सावरण ब्रह्म। निरावरण ब्रह्म तो मोक्ष में मिलता है—वेदान्त श्रवण करके मनन करके, निदिध्यासन करके परात्पर पर ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार करके तो निरावरण ब्रह्म मिलता है बाकी सुषुप्ति में सावरण ब्रह्म मिलता है। तो दुनिया के सब सुख उसके सामने तुच्छ हैं, झक मारते हैं दुनिया के सब सुख उसके सामने झख मारते हैं सावरण ब्रह्म आनन्द में। और निरावरण ब्रह्म का आनन्द होगा तो फिर कहना ही क्या है?

तो महाराज वह सब गोप लोग जो हैं वह सब अनन्त ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर घबरा गये। तो लिखा '**तेतुब्रह्महदं नीता मग्नाः कृष्णेनचोद्धृताः** ब्रह्मानन्दसमुद्र में निमग्न हो गये सब ब्रज बासी। भगवान् ने उनकी घबराहट देखकर उनको निकाला। निकाला तो भगवान् ने फिर ब्रह्मलोक में तो भगवान् कृष्ण की महिमा, अनन्त माधुर्य, सौन्दर्य—यह सब दर्शन हुआ। तब सब लोग कुछ आनन्द लिये। फिर वहाँ से आगे आना ही नहीं लिखा और वहीं से रासलीला आरम्भ हो गयी। इसलिये मालूम पड़ता है यह लीला इस मर्त्यलोक की कहानी नहीं है। मर्त्यलोक की कहानी नहीं है रासलीला। इसलिये यहाँ के नियम मर्त्यलोक के कोई नियम वहाँ लागू नहीं। मर्त्य लोक में मर्त्य लोक के नियम लागू होते हैं। जिस राष्ट्र में जो रहता है उस राष्ट्र के कानून उस व्यक्ति को लागू होता है। भारत का आदमी हो इंग्लैंड पहुँच जाय तो इंग्लैण्ड के कानून से वहाँ उसका शासन होगा। यहाँ का कानून वहाँ लागू नहीं होगा। इस तरह से ब्रह्मलोक का जो कानून है वह दूसरे ढंग का है, मर्त्यलोक का कानूनों का उल्लंघन अगर कहीं इस रासलीला में दिखायी देता हो तो समझ लो यह-यह मर्त्यलोक का विषय ही नहीं है। वह तो ब्रह्मलोक में सब ग्वाले पहुँचे थे, गोपवृन्द पहुँचे थे। निराकार,

निर्विकार, अनन्त, अद्वैत, अखण्ड परब्रह्म का अनुभव भगवान् ने कराया, उसके द्वारा वहाँ से उद्धृत किया, फिर ब्रह्मलोक में पहुँचाया, ब्रह्मलोक का अनन्त दिव्य सुख का अनुभव किया, उसके बाद ही रास आरम्भ कर दिया—

"भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमाया मुपाश्रितः ॥"

भागवत की पुस्तक पढ़कर देख लो 'भगवानपि ताः रात्रीः यहाँ से 'रासपंचाध्यायी प्रारम्भ होती है। इसके पहले से अध्याय में देखो यही कथा है जो हमने कहा। इसलिये इसमें कोई अगर मर्त्य लोक के कानून का उल्लंघन होता हो—रासलीला में तो वह उसका विषय ही नहीं।

जैसे सर्वभुक् अग्नि के समान कोई सर्वभक्षी नहीं हो सकता, रुद्र के समान कालकूट भोजी नहीं हो सकता, कृष्ण के समान गोवर्धन नहीं उठा सकता, वैसे ही चीरहरण, रासलीला का भी आचरण कोई नहीं कर सकता। यदि मूढ़ता से कोई करेगा तो अवश्य ही उसका सर्वनाश हो जाएगा। शास्त्र विरुद्ध श्रेष्ठों के आचरणों का अनुकरण कदापि नहीं करना चाहिये। श्रुति कहती है—**'यानिमेऽनवद्यानि तानित्वयोपास्यानि, नो इतराणि।'** वही कार्य किसी के लिये अदोषावह होता है, किसी के लिये शास्त्र विरुद्ध एवं सावद्य होता है। ऋषभदेव के लिये अवधूतचर्या ठीक है, परन्तु औरों के लिये वही अनुचित है। वैसे ही परात्पर परब्रह्म कृष्ण की वह अलौकिक दिव्य लीला कृष्ण के ही लिये है साधारण लौकिक प्रणियों के लिये नहीं। दूसरे तो उनके इस अलौकिक दिव्य चरित्र से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि योगीराज भगवान् श्री कृष्ण के समान ही हम भी अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करते हुए, अन्य स्त्रियों के प्रति निर्विकार एवं अक्षुब्ध मनस्क रहते हुए मन की एकाग्रता एवं स्थिरता बनानी चाहिये जिस प्रकार श्री कृष्ण भगवान् अनेक गोपांगनाओं के रहते भी निर्विकार रहे।

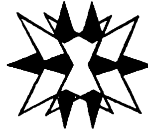
यही रासलीला कोई उपहास या प्राकृतलीला नहीं है। यह तो शुद्ध परात्पर परब्रह्म का नित्य लास्य है। रास का स्वरूप क्या है। रास का स्वरूप क्या है? **'माधवं माधवं वान्तरे अङ्गना अङ्गनमङ्गनामन्तरे माधवः।** एक एक गोपी के अन्तर में भगवान् हैं और भगवान् की एक एक मूर्ति के अनन्तर एक ब्रजाङ्गना है। सांख्यवादियों का कथन है—**क्षणपरिणामि नोहि भावा ऋते चितिशक्तेः'**। वह चितशक्ति ही भगवान् कृष्ण हैं। यह सम्पूर्ण प्रकृति चिद्रूप श्री कृष्ण के ही चारों ओर घूम रही है। आजकल वैज्ञानिकों का भी मत है कि एक ग्रह दूसरे ग्रह के आश्रित होकर गति कर रहा है। इस प्रकार सारा ही ब्रह्माण्ड गतिशील है। यही प्रकृति का नित्य नृत्य है। यदि अध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें, तो हमारे शरीर में भी भगवान् की यह नित्यलीला हो रही है। हमारा प्रत्यके अंग गतिशील है। हाथ, पांव, जिस्वा, मन, प्राण सभी नृत्य उसी की प्रसन्नता के लिये है, और वहीं नित्य एक रस रहकर इन सबकी गति-विधि का निरीक्षण करता है। जब तक इनके बीच में वह चैतन्य रूप कृष्ण अभिव्यक्त रहता है तब तक तो यह रास रसमय है, किन्तु उसका तिरोभाव होते ही यह विषमय होजाता है। इसी प्रकार गोपांगनायें भी भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर व्याकुल हो गयीं थीं। अतः इस संसार रूप रासक्रीड़ा में भी जिन महाभागों को परमानन्द कन्द श्री ब्रजेन्द्रनन्दन श्री कृष्ण की अनुभूति होती रहती है, उनके लिये तो यह आनन्दमय ही है। अहो! यह संसार तो अब भी प्रभु का वृन्दारण्य ही है। यहाँ वही चन्द्र छिटक रहा है, वही यमुना है, वही मन्द-सुगन्ध

सुशीतल समीर बह रहा है। तथापि आज श्री कृष्ण चन्द्र के ओझल हो जाने इन जीव रूप गोपांगनाओं के लिये यह दुःखमय ही हो रहा है। यदि वे दीखने लगें तो फिर वही परम आनन्दमय हो जाय। देखो, इस इस रास रस की प्राप्ति के लिए गोपाङ्गनाओं ने स्वधर्मानुष्ठान करते हुए श्री कात्यायिनी देवी की आराधना की थी। अतः हमें भी भगवतसंयोग सुख की प्राप्ति के लिये स्वधर्म पालन में ही तत्पर रहकर भगवान् की उपासना करनी चाहिये।

टिप्पणी–धर्म सम्राट् की जिस तपः पूत मृतक जियावनी, अमृत वाणी का भक्त गण आस्वादन कर रहे थे, परात्पर परब्रह्म ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर मदनमोहन श्री कृष्ण चन्द्र परमानन्द कन्द एवं वृषभानुनन्दिनी श्री राधारानी एवं श्रुतिरूपा गोपांगनाओं को एक वर्ष की अवधि का आश्वासन देकर और उन अलौकिक दिव्य रात्रियों में रासक्रीड़ा करने का वरदान देकर उन्हीं सर्वशक्तिमान् प्रभु के इंगित पर भाव समाधिस्थ होकर बीच में ही कानपुर से काशी को वेणुगीत निनाद को, उस पवित्र वाणी की गूंज को लेकर चले गये, भक्त भावुकों को उसी प्रकार तड़पता, तरसता छोड़कर जिस प्रकार गोपांगनाएँ तरसी तड़पी थीं और यह ब्रह्मवाणी, , बन्शीरूप बने। भगवान् शंकर की नगरी में जाकर अनन्तर उस वेणुनिनाद में प्रविलीन हो गये। भावुक पाठक श्रवण करें उस ब्रह्मरव को जो आज अप्राकृत रूप में, अभौतिक रूप से वहाँ उस अप्राकृत, अभौतिक अलौकिक, पूर्णानुराग रससार सरोवर समुद्भूत वृन्दावनधाम में आयोजित उस दिव्य रासलीला में गुञ्जायमान हो रहा है, भक्त और भगवान् का, गोपी और कृष्ण का जीव और ब्रह्म का जहाँ अभेद है। जहाँ पहुँचकर हमारे हरिहरानन्द स्वयं हरिहरानन्द स्वरूप ही हो गये हैं। उन पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय धर्मसम्राट्, ज्ञानी, भक्त ब्रह्मरूप श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के प्रति सम्पूर्ण भक्त भावुकों की ओर से कोटि कोटि नमन।

श्री हरिः

धर्म की जय हो। अधर्म का नाश हो।
प्राणियों में सद्भावना हो।
विश्व का कल्याण हो।
हर हर महादेव!



धर्म संघ प्रकाशन, मेरठ।

384 स्वामी पाड़ा मेरठ-2

उद्देश्य : सनातन धर्म, धर्म संघ एवं सनातन वैदिक सत्साहित्य के प्रकाशन द्वारा धर्म का प्रचार-प्रसार।

संरक्षक : 1000) या अधिक की सहायता प्रदान करने वाले।

सहायक सदस्य : 500) " " " "

साधारण सदस्य : 300 या " " " "

इन सभी प्रकार के सदस्यों को प्रकाशित सभी पुस्तकें निःशुल्क प्राप्त होती हैं।

प्रकाशित ग्रन्थ

1. **'जगद्गुरुगौरव'**–(द्वितीय संस्करण) 1000 पृष्ठ, 600 चित्र, आकार 20× 30 का आठवाँ स्मृति ग्रन्थ पू० पाद श्री कृष्णबोधाश्रमजी महाराज। परिवार में संग्रहणीय ग्रन्थ। मूल्य भी मात्र लागत का 1/4 है। मूल्य 75)
2. **'अभिनव शङ्कर श्रीस्वामी करपात्री जी'**–स्मृतिग्रन्थ धर्मसम्राट् श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज। पृष्ठ 626, चित्र 180, आकार 20× 30 का आठवाँ। यह भी अति उपयोगी ग्रन्थ है। इसका मूल्य भी एक चौथाई ही है। मूल्य 75)
3. **'करपात्री एक अध्ययन'**–(द्वितीय संस्करण) आकार 18 × 23 का आठवाँ चित्र 20 धर्मसम्राट् के विभिन्न धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर उन्हीं के विचार दर्शन पर आधारित 43 निबन्ध उन्हीं की भाषा में। मूल्य 30)
4. **'पिबत् भागवतं रसमालयम्'**–पूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज द्वारा 'रासंपचाध्यायी' पर कानपुर में दिये गये जीवन के अन्तिम चार प्रवचन। पृष्ठ 96, चित्र 2 आकार 18 × 23 का आठवाँ। मूल्य 15)
5. **'परमहंसी त्रिपथगा'**–(द्वितीय संस्करण) पृष्ठ 96 चित्र 5। पूज्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज, पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज एवं पूज्य स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी महाराज–तीन परमहंसों के मुखारविन्द से निसृत प्रवाहित ज्ञान गङ्गा रूपी 'परमहंसी त्रिपथगा'। आकार 18 × 23 का आठवाँ मूल्य 15)
6. **'श्रीमद्भगवद् गीता सप्तशती एक समालोचना'**–लेखक अ० श्रीविभूषित श्री मज्जगद्गुरुशङ्कराचार्य पूज्य स्वामी श्री निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज, गोवर्धन पीठ, उड़ीसा। पृष्ठ 134 आकार 18 ×23 का आठवाँ चित्र दो। मूल्य 5)
7. **'श्री भगवान जगन्नाथ महिमा एवं व्रत कथा'**–लेखकः कृष्ण प्रसाद शर्मा पृष्ठ 44, आकार 20 × 30 का सोलहवाँ, चित्र चार। मूल्य 2)
8. **'भारतीय शासकीय परम्पराएँ**–मनु, याज्ञवल्क्य, शुक्र, कामन्दक, सोमदेव सूरि एवं श्री करपात्री महाराज के राजनीतिपरक विचार। लेखक व्याख्यान वाचस्पति श्रीस्वामी कल्याणानन्द सरस्वती (श्री पं० कालीचरण पौराणिक)।
   चित्र 2, पृष्ठ 154, आकार 18 × 23 का आठवाँ। मूल्य 8)
9. **'अमृतवाणी'**–परम भागवत संत श्रीस्वामी विष्णु आश्रमजी महाराज के सदुपदेशों का अपूर्व संग्रह। पृष्ठ 52 आकार 18 × 23 का आठवाँ चित्र 1। संग्रहकर्ता–कृष्णप्रसाद शर्मा। मूल्य 5)

10. **'भगवान श्रीराम–रामराज्य और सरिता**–सरिता पत्रिका द्वारा भगवान श्रीराम एवं जगज्जननी सीता पर किये गये आक्षेपों की सटीक, संक्षिप्त एवं सारगर्भित आलोचना। लेखक : कृष्ण प्रसाद शर्मा। पृष्ठ 16, आकार 20 × 30 का सोलहवाँ। मूल्य 2)

11. **'ज्योतिर्मठ का इतिहास'**–लेखक : पं० मायादत्त शास्त्री पुरोधा एवं कृष्ण प्रसाद शर्मा। पृष्ठ 84, चित्र 21, आकार 18 × 23 का आठवाँ। मूल्य 5)

12. **'सनातन धर्म परिचय'**–सनातन धर्म के सिद्धातों का संक्षिप्त एवं सरल भाषा में परिचय। लेखक : मदन गोपाल सिंघल, मेरठ। पृष्ठ 32, आकार 20 × 30/16 मूल्य 2)

13. **'श्री करपात्री चित्रावली'**–धर्म सम्राट के 36 विभित्र मुद्राओं एवं अवस्था के दुर्लभ चित्रों का आकर्षक रंगीन एलबम साथ में, जीवन वृत्त, उपदेशामृत के संकलित अमृत कण। संकलन कर्त्ताः कृष्णप्रसाद शर्मा। पृष्ठ 60, आकार 20 × 30 18। मूल्य 50)

14. **'श्री पं० कालीचरण पौराणिक अभिनन्दन ग्रन्थ'**–गौड़वंशावतंस, गङ्गातीर निवासी, सर्वस्व त्यागी, दानवीर भामाशाह पं० कालीचरण पौराणिक के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ श्री गंगामहिमा, ब्राह्मणमहिमा एवं आश्रम संस्कृति की अद्भुत झलक पढ़कर पाठक गद्गद हो जायेंगे। लेखक : कृष्ण प्रसाद शर्मा। चित्र 20, पृष्ठ 96, आकार 20 × 30 का आठवाँ। मूल्य 5)

15. **'दीदी की सीख'**–स्त्रियों के लिये अत्यन्त शिक्षाप्रद, व्यवहारोपयोगी हितकर बातें। लेखिका : परम विदुषी कुमारी एच० आर्या सेवानिवृत्त प्राचार्या, रामायणरत्न। स्थानः चन्द्रमेढ़ा, सरगुजा म०प्र०। पृष्ठ 76, आकार 18 × 23 का आठवाँ। मूल्य 5)

16. **'उपदेशवचनामृत'**–ब्र०ली० जगद्गुरुशङ्कराचार्य, ज्योतिष्पीठाधीश्वर, उत्तराम्नाय, बदरिकाश्रम श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज के 144 उपदेशामृत का सूत्र रूप में संकलन। संकलनकर्त्ताः कृष्णप्रसाद शर्मा। पृष्ठ 20 आकार 20×30 का आठवाँ। मूल्य प्रेम सहित पठन-पाठन

17. **'त्रिकाल सन्ध्या'**–सम्पादक : पं० छोटे लाल आचार्य व्याकरण साहित्याचार्य न्यायतीर्थ, वेदान्तशास्त्री एम० ए०। पृ० 22 आकार 20 × 30 का आठवाँ मूल्य 1)

18. **'गीता पयस्विनी'**–श्रीमद्भगवद्गीता के मूल सात सौ श्लोकों के साथ-साथ सरल सुबोध भाषा में हिन्दी पद्यानुवाद। अनुवादक : 1008 श्री स्वामी चिदानन्दाश्रमजी महाराज। चित्र 5, पृष्ठ 104। मूल्य 20)

प्रकाशनार्थ तय्यार पुस्तकें

1. **'श्री मद्!भागवत महिमा एवं भगवद्भक्ति**–धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज के नौ प्रवचन।

2. **'शक्ति की उपासना'**–धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के नवरात्र में दिये गये माँ दुर्गा की आराधना विषयक 9 प्रवचन।

3. **आत्म कल्याण एवं आत्म बलिदान–धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा उक्त शीर्षक पर अद्भुत सात भाषण।**

4. **'मानव जीवन एवं सदाचार'**–धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा दिये गये प्रवचन।

5. **'करपात्र सूक्त'**–धर्म सम्राट् श्री स्वामी करपात्री जी महाराज के 200 विभिन्न विषयों पर उन्हीं की प्राञ्जल, प्रौढ़, संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय (भाषा) में दो सौ सूक्तों का विलक्षण संग्रह।

6. **'जगद्गुरु प्रवचन माला'**–ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज के विभिन्न विषयों पर किये गये प्रवचन।
7. **'जगद्गुरु प्रवचन माला'**–ज्योतिषपीठाधीश्वर श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती महाराज के विभिन्न विषयों पर किये गये प्रवचन।
8. **'श्री गङ्गागौरव'**–भगवती ब्रह्मद्रवस्वरूपा त्रैलोक्यपावनी माँ गंगा के सम्बन्ध में विलक्षण एवं महत्त्वपूर्ण संक्षिप्त शास्त्रीय सामग्री साथ में अनेकों दुर्लभ चित्र।
9. **'ब्राह्मणगौरव'**–उत्पत्ति प्रकरण', 'जाति प्रकरण', 'महिमा प्रकरण', 'सदाचार प्रकरण', 'कदाचार प्रकरण', 'चरित्र प्रकरण' आदि के साथ में अनेकों दुर्लभ चित्र।
10. **'धर्मतत्त्व'**–सनातन वैदिक साहित्य के शतधा ग्रन्थों से संकलित 'धर्म' सम्बन्धी 400 श्लोक हिन्दी अनुवाद सहित। पढ़कर पाठकों का ज्ञानवर्धन स्वाभाविक।
11. **'सन्मार्ग सोपान'**–अंकों के आधार पर 1 से 108 तक ज्ञानवर्धक, अद्भुत संकलन, जिन्हें पढ़कर पाठक क्रमशः शनैः-शनैः ज्ञानसोपानारोहण पूर्वक ऊँचा उठने लगता है–एक प्रकार का शब्दकोष।
12. **'लघु कथाएँ'**–शिक्षात्मक, प्रेरणात्मक एवं शब्द चित्रात्मक आध्यात्मिक लघु कथाएँ जो प्रायः पौराणिक साहित्य पर आधारित हैं पढ़कर पाठक को अद्भुत जानकारी प्राप्त होती है।
13. 'गाय, मन्दिर, तुलसी, श्राद्ध, गंगा, धर्म' आदि पर आधारित सनातन धर्म सम्बन्धी श्री मदन गोपाल सिंहल द्वारा विरचित लगभग 25 पुस्तकों का पुनः प्रकाशन भी अभीष्ट है।
14. **'अभिनन्दनग्रन्थ'**–परम भागवत संत श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज 'शुकताल' एवं बिहारघाट' को केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण ब्रह्मप्रदेश में अपने सदुपदेशों, सत्संगसुधावर्षण एवं श्री मद्भागवत कथामृत का पान कराने वाले वयोवृद्ध सन्त पूज्य श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज के पावन चरित्र-चित्रण, एवं उनकी अमृतवाणी का सुन्दर सचित्र संकलन उनके इस अभिनन्दन ग्रन्थ में भक्त भावुकों के करकमलों में समर्पित करने का विचार है। उनके भक्तों से अनुरोध है कि वे तत्काल महाराज श्री से सम्बन्धित विवरण, चित्र, पत्र इत्यादि भेजकर प्रकाशन को बल प्रदान करें। ग्रन्थ प्रकाशित होने पर उनकी सामग्री सधन्यवाद वापिस लौटा दी जायेगी।

उपरोक्त अंकित पुस्तकों के प्रकाशन के लिये धनिक वर्ग के सामर्थ्यवान सज्जनों से अनुरोध है कि वह प्रकाशन के सदस्य बनकर प्रकाशन कार्य को बल प्रदान करें। यदि किन्हीं सज्जन के पास कोई धर्मादा या अन्य इस प्रकार की राशि हो तो वह इस धर्म प्रचार हेतु सहायता देने की कृपा करें। उनकी सहायता एवं उनका पूर्ण विवरण पुस्तक में प्रकाशित किया जायेगा। इससे बड़ा कोई दान नहीं है।

यदि कोई सज्जन इन पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक को अपने मूल्य से छपवाना चाहें तो हम यह सेवा कर सकते हैं। हमारा मुख्य लक्ष्य धार्मिक सत्साहित्य प्रकाशित कर उचित लागत मूल्य पर पाठक तक पहुँचाना ही है।

किसी भी अवसर पर पूरा सैट मंगाकर भेंट दे अथवा छोटी-छोटी पुस्तकें धर्मार्थ वितरण के लिए मंगाएँ। आप पुण्य के भागी होंगे। भेंट पाने वाले के जीवन में उजाला होगा।

निवेदक–

कृष्ण प्रसाद शर्मा
कार्यकारी अध्यक्ष

श्याम सुन्दर वाजपेयी
अध्यक्ष